हम आध्यात्मिक क्यों बनें ?

लेखक

परम सन्त कैप्टन लालचन्द जी महाराज

प्रकाशिका

आचार्या डॉ. कमला देवी

पता :

श्री जयमल सिंह एडवोकेट

कोठी नं. 332, सैक्टर-15ए,

हिसार - 125001 (हरियाणा)

फोन नं. : 01662-244725

मो. : 94160 58395

सर्वाधिकार सुरक्षित (दिसम्बर, 2010)

मूल्य :

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी माध्यम से प्रकाशक के लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना अविधिमान्य होगा।

अनुक्रमणिका

क्र.	शीर्षक	पृ.सं.
1.	मंगलाचरण	4
2.	प्राक्कथन	5
3.	भूमिका	8
4.	दु:खों से मुक्ति	11
5.	विचार शक्ति	15
6.	विश्वास, सिद्धि व चमत्कार	20
7.	योग्य सन्तान उत्पति	24
8.	सुखी जीवन जीने की कला	27
9.	मानव जीवन का ध्येय	32
10.	गुरु की आवश्यकता	38
11.	गुरु रुप	47
12.	धार्मिक भेदभाव की समझ	56
13.	ध्यान योग से सुख शान्ति की प्राप्ति	64
14.	अनुभव ज्ञान	75
15.	मानव कल्याण	84

मंगलाचरण

वन्दनम् सत् ज्ञान दाता, वन्दनम् सत् ज्ञानमय।
वन्दनम् निर्वाण राता, वन्दनम् निर्वाणमंय।।

भक्ति मुक्ति योग युक्ति, आपके आधीन सब।
आप ही हैं सिन्धु सद्गति, जीव जन्तु मीन सब।।

आप गुरु सतगुरु दया, और प्रेम के भण्डार हैं।
आप कर्त्ता धर्त्ता हैं, कर्त्तार जगदाधार हैं।।

ऋद्धि सिद्धि शक्ति नौनिधि, हैं चरण में आपके।
बच गया भव दुख से जो, आया शरण में आपके।।

भक्ति दीजै नाम की, सतनाम में विश्राम दें।
सतगुरु जी अपना कीजै, अपना सत धाम दे।।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक ''हम आध्यात्मिक क्यों बने ?'' एक बहुमूल्य रत्नावली है जिसमें ज्ञान-विज्ञान के अमूल्य हीरे-जवाहरात पिरोए गए हैं। जीवन के सभी क्षेत्रों पर इसमें प्रकाश डाला गया है। सुखमय जीवन जीने की विधि दर्शाने वाला यह एक सुंदर चित्रपट है जिसमें धर्म की सच्चाई का एक-2 चित्र उजागर करके चित्रित किया गया है। सभी धर्म-शास्त्रों के ज्ञान को सारांश रूप में प्रकट करने वाला यह एक अनुपम खजाना है। इसमें भिन्न-2 धर्म सम्प्रदाय वाले लोगों के अज्ञान को दूर कर एक मानव धर्म के सूत्र मे पिरोने का प्रयास किया गया है। इसे लोगों के मानसिक दुख-तकलीफों को दूर करने के लिए विभिन्न जड़ी-बूटियों वाला वट वृक्ष कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें धर्म का नकाब पहनकर लोगों को लूटने वालों का पर्दाफाश किया गया है ताकि लोग अपने स्वरूप को पहचान सके। मनुष्य स्वयं ईश्वर का साक्षात रूप है। यदि वह अपने आपको पहचान ले तो वह दूसरों के सामने गिड़गिड़ाने की बजाय निर्भयता से सिंह के समान अपना जीवन बिता सकता है।

मेरे परम आराध्य देव, प्रात: स्मरणीय महाराज कैप्टन लालचंद जी महाराज इसके ज्वलंत उदाहरण है। वह सच्चाई व धर्म के साक्षात् अवतार है। कई महापुरूषों के पास भटकने के पश्चात जब मैं इनके सम्पर्क में आई तो मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि आज भी हर स्थिति व हर हालत में मन की समता बनाए रखने वाले गीता में बताए गए जैसे स्थितप्रज्ञ पुरूष विराजमान है। यह मेरा सौभाग्य है कि मुझे इनके समीप रहने का काफी अवसर प्राप्त हुआ है। अत: मेरी दृष्टि में ये दुनिया की हर चुनौतियों का सामना करते हुए अपने गृहस्थ ध र्म का पालन करते हुए एक छोटे से गांव में सामान्य जीवन जीते हुए, उस परम तत्व की धार का सहज में अनुभव करते हुए, मुक्त जीवन

जीते हुए, अपने अनुभव ज्ञान से लोगों को रोशन करते हुए एक देदीप्यमान ज्ञान स्तम्भ हैं। आज 87 साल की आयु में भी ये अब पुस्तकों के माध्यम से घर-2 जाकर या पुस्तकें भेज कर लोगों के धर्म-संबंधी अज्ञान को दूर कर ज्ञान चक्षु प्रदान करने में लगे हुए है। मैं तो चाहती हूं कि मीडिया के द्वारा इनका यह अमूल्य ज्ञान जन-जन तक पहुंचाया जाए ताकि लोग धर्म की सच्चाई से अवगत हो सके। परंतु इन्होंने अपने ज्ञान के प्रचार के लिए कभी किसी से पैसे की याचना नहीं की और न ही सेवा देने वालों से कभी कुछ लिया। इन पुस्तकों के प्रकाशन की भी मेरी इच्छा थी जो इनकी कृपा से फलीभूत हो गई और अब मैं यह चाहती हूं कि जो भी इन पुस्तकों का अध्ययन करे और उसे ये पुस्तकें अच्छी लगे तो वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार इन्हें दूसरों तक पहुंचाए ताकि अधिक से अधिक लोग इनके ज्ञान से प्रकाशित हो सके। पुस्तकों के प्रचार में आप सभी के सहयोग की अपेक्षा है ताकि आप भी इस शुभ कार्य को कर पुण्य के भागी बन सके।

पुस्तक प्रकाशन में हमेशा से अपना सराहनीय योग देने वाले स्नेहिल भ्राता श्री एडवोकेट जयमल सिंह जी के प्रति में तहदिल से उनका आभार प्रकट करती हूं जो स्वयं भी ज्ञान का साक्षात् रूप हैं। इसके साथ ही अनुजा राजबाला (गणित प्रवक्ता) का भी मैं धन्यवाद करना चाहूंगी जिन्होंने अपना अमूल्य समय देकर इस पुस्तक को संवारने में अपना सहयोग दिया है और समस्त पुस्तकों के प्रचार व प्रसार में अपना कीमती समय व धन का सहयोग देने वाले भ्राता श्री जिलेसिंह जी सांगवान (एस.ई. सुपरिटैन्डैंट इंजिनियर) तो अविस्मरणीय ही है। इनकी जितनी प्रशंसा की जाए उतनी ही कम है।

पुस्तक प्रकाशन में अपना आर्थिक योगदान देने वाले साक्षात् कुबेर स्वरूप व सज्जनता की मूर्ति श्री जे.सी. गुप्ता जी (यू.के) के

प्रति तो आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास उचित शब्द ही नहीं है। मैं दिलोजान से उनके प्रति नतमस्तक हूं तथा ईश्वर से यह प्रार्थना करती हूं कि वो उन्हें ज्ञान के साथ-2 दीर्घायु प्रदान करे।

डा. कमला देवी
प्राध्यापिका (संस्कृत विभाग)
एम.एम. कॉलेज
फतेहाबाद (हरियाणा)
फोन : 01667-225520 मो. 9416475568

भूमिका

हमारे प्राचीन ऋषियों, मुनियों, महापुरूषों व संतों ने मानव को सुख शांति देने के लिए अनेक सिद्धांत व नियम बनाए जो उस समय के अनुसार उचित थे परंतु आज समय बदल गया है। लोगों के खान-पान व रहन-सहन में काफी परिवर्तन आ गया है। अधिक महंगाई होने के कारण मनुष्य अपने जरूरतों को पूरा करने के लिए उचित-अनुचित तरीके से धन कमाने में जुटा हुआ है। इस भागदौड़ में उसके पास अपने बारे में विचार करने का समय ही नहीं है। चारों तरफ भ्रष्टाचार व लूट-पाट मची हुई है। लोग दुखी व अशांत है।

संत मत जो लोगों के दुखों को दूर कर आत्म ज्ञान की शिक्षा के लिए आया था उसमें भी असलियत समाप्त हो रही है। अधिक महापुरूष डेरे, आश्रम व गद्दियों के चक्कर में बंधकर लड़ाई व प्रलोभन के चक्कर में आ गए है। आत्म तत्व के अनुभवी महापुरूष आज रहे ही नहीं और यदि है भी तो नाम मात्र के। यही कारण है कि लोग धर्म की सच्चाई को न समझकर अनेक सम्प्रदायों में बंट गए है और उनमें कट्टरता पनप रही है। एक सम्प्रदाय के व्यक्ति दूसरे से घृणा, द्वेष व नफरत करते हैं और प्रतिदिन धर्म के नाम पर नित नए झगड़े हो रहे हैं।

आज इस धर्म के रूप को समझने के लिए सच्चाई की अत्यंत आवश्यकता है और वह सच्चाई है मानवता। यदि मनुष्य में इंसानियत (मानवता) नहीं है तो वह कभी धर्मात्मा नहीं बन सकता है। कबीर ने कहा है:-

मानव बन कर ना जिया, जिया तो डांगर ढोर।

मनुष्य धर्म की शरण में जाता तो है अपने कल्याण के लिए लेकिन वहां धर्म की सच्चाई न मिलने पर वह अपने कल्याण की बजाय कट्टरपने में आकर अपने अशुभ कर्म बना लेता है। यदि

मनुष्य केवल अपना सुधार कर ले तो वह दूसरों का भी भला कर सकता है क्योंकि अपने कल्याण में ही सबका भला है।

मेरे गुरु महाराज पण्डित फकीरचंद जी ने धर्म में इस पाखंड को देखकर और भिन्न-2 सम्प्रदायों के झगड़ों को देखकर धर्म का नाम मानव धर्म रखा और अपने सत्संगों व पुस्तकों में उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि मनुष्य पहले इंसान बने क्योंकि इन्सानियत पहले है और धर्म बाद में। इस संसार में सबसे बड़ी पूजा यही है कि इंसान इंसान के काम आए। मुझे जब गुरु कृपा से पहले ही दिन उस तत्व का अनुभव हुआ और धीरे-धीरे उनके सत्संग व वचन से इस धर्म के रहस्य को समझा तो मैं जब समय मिलता उनके आश्रम में जाकर अवसर पाकर उनकी शरीर की सेवा करना चाहता था। एक दिन उन्होंने मुझे समझा कर कहा कि लालचन्द। मेरी यह सेवा नहीं है। मेरी सेवा यह है कि जो तुम्हें ज्ञान प्राप्त हुआ है उसे अनुभव करो और अपने अनुभव के आधार पर इसे बांटते रहो क्योंकि आज का मानव बहुत दुखी है। आप रहस्य को समझ गए है। अत: जो जीव मन के चक्कर में फंसे हैं उन्हें वहां से निकालने का उपाय बताकर सुखी रहने का ज्ञान देते रहो और इस कार्य का कोई मुआवजा उनसे न लेना। धीरे-धीरे आप इस कार्य को करते हुए अपनी मंजिल पर पहुंच जाओगे। और उनके इस आदेश के बाद मैं सन् 1962 से यही कार्य करता आ रहा हूं और इसके लिए कभी बस से, कभी रेल से तो कभी टैक्सी से लोगों के घर-घर जाकर उनको सचेत करने की कोशिश करता आ रहा हूं। मुझे दूसरों का पता नहीं परंतु इस अध्यात्म ज्ञान से उस मालिक का साक्षात्कार करते हुए मुझे इस दुनिया में जीना आ गया और आज 87 साल की आयु में भी मेरे अंदर 18 वर्ष के नवयुवक जैसा हौसला, उमंग व उत्साह है। हर हाल व स्थिति में मैं संतुष्ट हूँ और इसी खुशी को बांटने के लिए डा. कमला ने मुझसे आग्रह किया कि आप अपने अनुभव के आधार पर कुछ अवश्य

लिखे नहीं तो आपका यह ज्ञान आपके साथ ही चला जाएगा। आप धर्म के बारे में जिस सच्चाई का बयान कर रहे हैं वह आजकल कोई महात्मा नहीं बता रहा है और इसी अज्ञानता में लोग लुटे जा रहे है। अत: अगर आपका अपना ज्ञान लेखनी में आ जाएगा तो इससे बहुत लोगों का फायदा होगा और इसके इस भाव को देखकर व इसकी प्रार्थना को सुनकर मैंने अपने योग साधना के अनुभव के आधार पर ये छोटी-छोटी 15 पुस्तके लिखी है। धर्म कर्म के जिज्ञासु घर बैठे ये पुस्तकें पढ़ सकते हैं और बात को समझ कर अपना जीवन सुंदर बना सकते है। बुद्धिमान् सज्जनों तथा गृहस्थ जीवन में योग साधना करने वाले सज्जनों के लिए ये पुस्तकें विशेष लाभदायक है। अगर कोई सज्जन इन पुस्तकों को पढ़कर लाभान्वित होगा तो मैं अपने आपको गुरु ऋण से मुक्त हुआ समझूंगा।

कैप्टन लालचंद
गांव, पोस्ट-दांदू, त. व जिला-चुरू,
राजस्थान-331001
फोन नं. 01562-283121
मो. 9784425005

दुखों से मुक्ति

मानव संसार में पैदा होता है और शरीर छोड़कर चला जाता है। वह फिर अपने ही शुभ-अशुभ कर्मो को भोगने संसार में आवागमन के चक्कर में आ जाता है। यहां मनुष्य को जो दुख भोगने पड़ रहे है वह केवल अज्ञान के कारण है। प्रकृति में दुख नाम की कोई चीज नहीं है।

आप दुख का कारण और दुखों को दूर करने का उपाय समझो। हर मनुष्य के मन में विचारों की धारा या Radiation सुबह से शाम तक बहती रहती है। ये विचार दो प्रकार के है। एक घटिया और दूसरे बढ़िया। यानी एक मन के अनुकूल जिससे मन को सुख शांति, उमंग व प्रसन्नता मिलती है। दूसरे मन के प्रतिकूल जिससे मन को दुख, भय, चिंता व फिकर का एहसास होता है। मनुष्य अज्ञान के कारण घटिया और बढ़िया दोनों तरह के विचारों से खेलता रहता है।

मनुष्य इस संसार में परिवार या समूह में रहता है। जब परिवार के प्राणी आपस में खुश व प्रसन्न रहते है तब इनके विचार सुंदर, अच्छे व एक दूसरे का भला चाहने वाले होते है और जब ये विचार ब्रह्माण्ड में किसी स्थान से टकराकर वापिस आते हैं तब मन के अनुकूल घटनाएं घटती हैं। जैसे - धन का लाभ, जीवन में किसी तरह की सफलता, शुभ समाचार मिलना इत्यादि। और जब घरों में सास बहु पर ताना मारती है, पति पत्नी पर क्रोध करता है या कटु वचन बोलता है, भाई-भाई को धोखा देता है, बेटा बापकी आज्ञा में नहीं रहता और ये आपस में एक-दूसरे से नाराज या नाखुश होते है तब उनसे घटिया विचार यानी नफरत, ईर्ष्या व द्वेष के विचार निकलते रहते है और जब ये बुरे विचार ऊपर ब्रह्माण्ड में जाकर ए. सी. करंट की तरह वापिस आते है तब दुख, तकलीफ, परेशानी लेकर आते है जिन्हें मनुष्य नहीं चाहता है। इनके प्रभाव से घर में घाटा हो जाता है या कोई दुर्घटना हो जाती है या कोई रोग हो जाता है अर्थात्

घटनाएं मन के प्रतिकूल घटती है। इसी प्रकार आज की राजनीति के विधि विधान देश के लिए तरह-तरह की समस्याएं पैदा करते हैं। एक पार्टी दूसरी पार्टी की कमी देखती है, उसका बुरा चाहती है और उस पर कीचड़ उछालती है तो देश पर सामूहिक विपत्ति आती है। जैसे अकाल पड़ना, बाढ़ आना या किसी महामारी का फैलना ये सब सामूहिक रूप से बुरे विचारों का ही परिणाम है।

इन दुख व तकलीफों का इलाज है- शिव संकल्प अर्थात् हर समय सुंदर-2 विचार रखना। स्वप्न में भी घटिया विचार न सोचना। यह लोक संकल्प व विचारों का है। मनुष्य जैसे विचार व संकल्प रखता है उसका जीवन वैसा ही बन जाता है। यह आसान बात है। जीवन में सफलता व सुख-शांति का जीवन जीने के लिए सही समझ, विवेक, सद्बुद्धि, अनुभूति व ज्ञान की अत्यंत आवश्यकता है। ये मनुष्य को जहां से भी मिले, लेकर सुख-शांति का जीवन बिताना चाहिए। जैसे कहा है:-

गति मति कीरति, बहुति भलाई। जो जस जतन जहां से पाई॥
सो जानो सत्संग प्रभाऊ। वेद लोक नहीं आना उपाऊ॥

अर्थात् मनुष्य को इस लोक में सुख-शांति से जीवन जीने का सद्मार्ग, सुंदर चाल-चलन, सद्बुद्धि, कीर्ति, यश, परोपकार, शिव संकल्प व अन्य सदगुण सत्संग के प्रभाव से ही मिल सकते है। इसके लिए और कोई उपाय इस लोक में या वेद शास्त्रों में नहीं है, यह बात रामायण में कही भी गई है।

बिन सत्संग विवेक न होई। राम कृपा विन सुलभ न सोई॥

और यह सत्संग भी किसी ज्ञानी व अनुभवी पुरूष का होना चाहिए लेकिन इस सत्संग का मिलना भी बड़े भाग्य की बात है। जैसे कहा है:-

राम कृपा नाशे सब रोगा, जेहि भांति बने संजोगा।
सतगुरू वैद्य वचन विश्वासा, संजम ये न विषय की आसा॥

शास्त्रों में ये धर्म -कर्म की सब बातें मनुष्यों के लिए कही

गई हैं व लिखी गई है ताकि मनुष्य इस संसार में सुंदर खेल करते हुए अंत में सदा के लिए परम शांति प्राप्त कर सके। यदि आज हम गौर से देखे तो मानव क्या छोटा क्या बड़ा सभी दुखी मालूम हो रहे है। मेरे अनुभव के अनुसार मानव को ज्ञान नहीं है तभी वह मनुष्य पद पाकर भी दुख में धक्का खा रहा है। अब प्रश्न यह है कि वह अज्ञान क्या है? जिसके कारण मनुष्य दुखी है। देखने में मनुष्य ने संसार के सभी क्षेत्रों में जैसे विद्या, बुद्धि आदि में बहुत उन्नति की है। अध्यात्म ज्ञान में भी संतों ने नई खोज व अध्यात्म ज्ञान के रहस्य को खोलकर बुद्धिमानों व विद्वानों के बहुत से शंका भ्रमों को दूर कर दिया है जिससे भविष्य में आने वाले अध्यात्म ज्ञान के खोजियों के लिए रास्ता आसान व सहज हो गया है। कोई शक नहीं है कि मानव ने इस युग में विज्ञान के क्षेत्र में भी मानव की सुख-सुविधाओं के लिए नए-नए अविष्कार कर इसको सुखी बनाने का यत्न किया है।

मनुष्य ने सब कुछ जान लिया है। उसे केवल अपना खुद का ज्ञान नहीं है कि वह स्वयं क्या है? कहां से आता है और कहां पर जाता है? मनुष्य के अंदर बोलने वाला तत्व कौन है? यानी मनुष्य में यह खेल करने वाला तत्व क्या है? यह सब ज्ञान किसी अनुभवी जीवित महापुरूष से ही जाना जा सकता है। देश, काल व समय के अनुसार ऐसे महापुरूष को सज्जनों ने विभिन्न नामों से विभूषित किया है। जैसे फकीर, सन्यासी, पूर्णकाम योगी इत्यादि। गीता में ऐसे पुरूष को ज्ञानी व स्थितप्रज्ञ कहा गया है। ऐसे महापुरूष की संगत व सेवा से सहज में ही मनुष्य में उस महापुरूष की Radiation के प्रभाव से उनके सब गुण आ जाते हैं। जैसे कहा है:-

पारस और संत में यही अंतरो जान।
वह लोहा कंचन करे, गुरु कर ले आप समान॥

मेरे अनुभव के अनुसार यहां प्रकृति में किसी प्रकार का कोई दुख कष्ट नहीं है। यह संसार तो परमात्मा का सुंदर बगीचा है। यह

परमात्मा की लीला का सुंदर घर है। यानी जैसी जिस सज्जन की दृष्टि है वैसा ही वह इस संसार में देखता है। क्योंकि 'जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि' अर्थात् झूठे को सब झूठे ही मालूम होते है। ठग को सब ठग, दानी को सब दानी और भक्त व धर्मात्मा को सब धर्मात्मा ही नजर आते है। वास्तव में यह संसार अति प्यारा है और भिन्नता इसकी सुंदरता है। मानव को अज्ञान है और इसी अज्ञानता के कारण वह यहां दुखी है। तो फिर क्या करना है जिससे मनुष्य यहां किसी प्रकार से दुखी न हो? इसके लिए वह कल्याणकारी विचार रखे तथा दूसरों की कमी न देखकर उनके गुणों की तरफ दृष्टि रखें। जैसे :

ऊंची दृष्टि करे जो प्राणी, सार समझ में आवे।
सार पाय शरणागत आवे, आवागमन नसावे।

वह परमात्मा सर्वशक्तिमान् है। मनुष्य क्या बड़ा क्या छोटा, सब उसी से मांगते आए हैं। वही सबका पालन-पोषण करता आया है। जैसे सन्त वाणी में कहा है :

सात द्वीप नौ खण्ड में, सतगुरु तेरा ही पसारा।
क्या राजा क्या बादशाह, सबने हाथ पसारा।।
फैज का दर है खुला, बन्द नहीं हरगिज।
शर्त यह है कि मांगने कोई साहिल आए।
सांई के दरबार में, कमी काहू की नांहि।
बन्दा मौज न पावहि, चूक चाकरी माहि।।
सकल पदार्थ है जग माहि, कर्म हीन नर पावत नाहि।।

भाव यह है कि मनुष्य अपने दुखों से छुटकाना पाने के लिए किसी सतगुरु महापुरुष की शरण ले और ज्ञान प्राप्त करें। जैसे कहा है:

ज्ञान दीजे ज्ञान दाता, ज्ञान के भण्डार से।
सहज छुटकारा मिले, इस दुखी संसार से।।

विचार-शक्ति

मनुष्य के विचार में बहुत शक्ति है। वह जाने अनजाने जो कुछ सोचता रहता है उसका फल भोगता रहता है लेकिन इस बात का उसे ज्ञान नहीं है। मनुष्य का जीवन उसके अपने ही संकल्प व विचारों पर निर्भर करता है जैसे 'जैसा ख्याल वैसा हाल', 'जैसी मति वैसी गति' इसलिए उसे कमजोर, भय व निराशावादी के विचार न रखकर हमेशा आशावादी व कल्याणकारी विचार रखने चाहिए तथा घटिया व नकारात्मक विचारों को स्थान नहीं देना चाहिए। जैसे हमारे फोन पर यदि कोई ऐसा नंबर आ जाता है जिसे हम सुनना नहीं चाहते तो हम उसे तुरंत काट देते है। इसी प्रकार कमजोर व हल्के ख्याल को तुरंत कट कर देना चाहिए नहीं तो हमें उस ख्याल का फल भोगना पड़ेगा। उदाहरण के तौर पर मेरे गांव के पास की औरत हमेशा मुझसे यह शिकायत करती थी कि उसकी बहु उसकी सेवा नहीं करती। मैंने उसे समझाया कि आप ऐसे विचार मत रखा करें बल्कि ये सोचा करो कि मैं ही इसकी सेवा कर दूं। लेकिन वह मेरी बात को समझ नहीं पाई और उसका परिणाम यह हुआ कि कुछ समय बाद जब मैं उनके घर गया तो वह चारपाई पर लेटी हुई थी और उसके पैर पर पलस्टर चढ़ा हुआ था। मुझे देखकर वह रोने लगी और कहने लगी कि गुरु जी यह क्या हो गया? मैंने उसे कहा कि यह तेरे विचार का नतीजा है। तुम सेवा चाहती थी। सेवा बीमार आदमी की होती है और वह तुम्हारी हो रही है। इसी प्रकार भीलवाड़ा की एक औरत जो आचार्या पद पर है और जो मेरे गुरु महाराज जी की शिष्या है, वह बहुत दुखी थी। जब मैंने उसके दुख का कारण पूछा तो उसने कहा कि मेरे बच्चों का अच्छा कारोबार है लेकिन वह मुझे कुछ नहीं देते है और मेरे आदमी ने दुकान छोड़ दी है। अब मै कुछ दान करना चाहती हूं तो मेरे पास पैसे नहीं है। उसकी बात सुनकर मैंने पूछा कि आप मेरे गुरु

महाराज जी के समय में कैसे विचार रखती थी? उसने उत्तर दिया कि मैं गुरु महाराज जी से यही कहती थी कि मेरे बच्चों का अच्छा कारोबार चल जाए, उनकी अपनी फैक्ट्रियां हो और मुझे कुछ नहीं चाहिए तो मैंने कहा कि जैसा आपने चाहा था वैसा तो हो गया है। यह सब आपके विचार का ही परिणाम है।

इसी प्रकार एक उदाहरण मेरे गुरु महाराज जी का देता हूँ। जब उनका पहला विवाह हुआ तो उनके घर की आर्थिक हालत ज्यादा अच्छी नहीं थी और उनके पिता कुछ कठोर स्वभाव के थे। विवाह के समय उन्हें अच्छे-अच्छे कपड़े पहनने को मिले और उनका आदर-सत्कार हुआ तो उनका विचार बना कि ऐसा तो एक बार और होना चाहिए और इस विचार का परिणाम यह निकला की उनकी पहली पत्नी की मृत्यु हुई और उनका दूसरा विवाह हुआ।

इसी प्रकार की और भी बहुत घटनाएं मैं दिन भर देखता रहता हूँ। तो बात स्पष्ट है कि विचार की शक्ति प्रबल है और यदि इन विचारों का बार-2 चिंतन किया जाए तो वे हमारे कर्म बन जाते हैं जिन्हें हमें भोगना पड़ता है। जैसे एक व्यक्ति यदि गरीब है और वह अमीर बनने का विचार रखता है और उसके लिए वह जीवन भर प्रयास भी करता है और संयोगवश अचानक उसकी मृत्यु हो जाती है तो अपने विचारों के फलस्वरूप वह किसी करोड़पति के घर में जन्म लेगा। इस प्रकार यह कर्मों का सिलसिला जन्म-जन्मान्तरों से चला आ रहा है। जिस विचार का फल मनुष्य इस जीवन में नहीं भोग पाता तो उसी विचार के अनुसार उसका दूसरा जन्म होगा। जिसका फल वह वहां भोगता है और यही उसके प्रारब्ध कर्म कहलाते है। इसी को भाग्य कहा जाता है। इसलिए मैं कहता रहता हूं कि मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। जिसका भाग्य अच्छा नहीं है वह अपना नया भाग्य अच्छा बना सकता है लेकिन पिछला तो उसे भोगना ही पड़ता है।

जैसे एक व्यक्ति लाटरी की टिकट खरीदता है और उसकी

देखा देखी में या अपनी इच्छा से बहुत से लोग लाटरी की टिकट खरीदते हैं परंतु लाटरी तो किसी एक की ही निकलती है और वह निकलती उसकी है जिसने पहले दान किया होता है। उसी के दान के कारण उसे लाभ हो जाता है लेकिन जीव को इस बात का ज्ञान नहीं है। जिसने जैसे कर्म किए होते है वैसा भोगने को वह मजबूर है। इसलिए संत महापुरूष किसी बुरे आदमी से नफरत, द्वेष नहीं करते क्योंकि वे जानते हैं कि उनके संस्कार ही ऐसे पड़े हुए हैं जिन्हें करने पर वह मजबूर हैं, उन्हें तो हर जीव में वह परमात्मा तत्व ही नजर आता है। जैसे मैं हमेशा कहता रहता हूं कि अब मेरी दृष्टि ऐसी बन गई है कि

जिधर देखता हूँ, उधर तू ही तू है।
हर शै में जलवा तेरा हू ब हू है॥

प्रकृति के नियम के अनुसार हर जीव यहां अपने प्रारब्ध कर्म के अनुसार अपने कर्म का फल भोगता रहता है और नए कर्म बनाता रहता है। कबीर साहिब का कर्म विचार के विषय में निम्न शब्द देखिए-

हंसा छोड़ो कर्म की आसा।
कर्म काल सब जगत नचावे, फिर फिर करे ग्रासा॥
उपजन विनसन कर्म ही किये, कर्म ही जगत विनासा।
कर्म ही काल व्याल मुनि कर्म ही, कर्म ही की सब त्रासा॥
जप तप कर्म बांध जग राखे, पाप-पुण्य विश्वासा।
कर्म ही देवल तीर्थ कीने, कर्म ही अल्ला उदासा॥
कर्म ही योग ध्यान तप पूजा, कर्म चढावे दासा।
कर्म ही दुख-सुख जड़ चेतन है, तीन लोक प्रकासा॥
कर्म ही दे ले पुण्य कर्म ही, यज्ञ दान देह वासा।
जीतना भूत कर्म के वश है, चार विचार निवासा॥

कर्म दुखी दारिद्री कहिए, कर्म ही भोग विलासा।
कर्म विकार राह तज बैठो, कहें कबीर सुख बासा॥

अर्थात् इस जगत में हर मनुष्य स्वाभाविक रूप से अपना कर्म करने को मजबूर है। करने कराने वाला कोई ओर ही है, हम तो केवल निमित्त मात्र है। अब मैं आप लोगों को यह ज्ञान दे रहा हूं यह मेरी मजबूरी है, मैं आप लोगों पर कोई एहसान नहीं करता। मेरे कर्म ही ऐसे पड़े हुए है। मैं तो ये पुस्तक लिखना ही नहीं चाहता था फिर भी डा. कमला के बार-2 आग्रह करने पर ये पुस्तके लिखी गई है। ये सब क्या है? यह उसकी मौज है। यह सब होना ही था। इस प्रकार हम सब कर्म के चक्कर में है। प्रकृति ने जिससे जो काम लेना है वह उसके दिमाग को उसी ओर लगा देती है। इसमें आदमी के वश की कोई बात नहीं है। बड़े-बड़े महापुरूष जो लोगों को ज्ञान देते है और संसार उनको पूजता है वह ऐसे गिरते हैं कि पुलिस उनके पीछे हो जाती है। इसका कारण यह है कि यह उनके वश की बात नहीं थी बल्कि यह उनका अपना ही अशुभ कर्म था। जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि यह संसार उसके ही कर्म का है और उस मालिक की मौज का है तो फिर वह हाय-2 नहीं करता और उसका जीवन सुखी हो जाता है। और वह आगे के लिए अशुभ कर्म नहीं करता।

संतों ने इस कर्म के फल से बचने का केवल एक ही उपाय बताया है और वह है सुरत शब्द योग। इस योग से जन्म-जन्मान्तरों के शुभ और अशुभ कर्मों को ज्ञान की अग्नि से जलाकर भस्म किया जाता है। यह विधि भाग्य से किसी जीवित मुक्त महापुरूष की संगत से जानी जाती है। नीचे संत वाणी का शब्द है-

'गुरू मोहि अपना रूप दिखाओ।'

आगे एक पंक्ति में लिखा है-

देखू रूप मग्न हो बैठूं, अभय दान दिलाओ।

इसी ही शब्द की एक और पंक्ति में लिखा है–

डरता रहूं मौत और दुख से, निर्भय कर अब मोहि छुड़ाओ।

भाव यह है कि मनुष्य मन के प्रतिकूल घटना से डरता है, चिंता, फिक्र करता है लेकिन यह अध्यात्म ज्ञान मनुष्य को डर, भय व चिंता से मुक्त कर उसे सदा के लिए निर्भय कर देता है। आम लोगों की धारणा है कि गीता सुनने से मुक्ति मिलती है और गंगा में नहाने से सब पाप घुल जाते है। शास्त्रों में इसके कुछ और भी नाम बताए हैं। जैसे : गीता, गंगा, गायत्री, सीता, सत्या, सरस्वती, ब्रह्म विद्या, ब्रह्म बली, त्रि सन्ध्या, मुक्तिगहनी, अर्धमात्रा, चिदानन्दा, बहुगुणी और भयनाशनी।

यहां भी भयनाश की बात आई है। ये हमारे वेद शास्त्र सब उच्च कोटि के ग्रंथ है परंतु सब रहस्य में है। आज का मानव यह रहस्य समझ नहीं सकता। केवल पढ़ने व सुनने से ही काम होता तो आज मनुष्य की यह दशा नहीं होती। सभी धर्म सम्प्रदायों के सज्जन अपने धार्मिक ग्रंथ रोज पढ़ते हैं परंतु सच्चाई से बहुत दूर है। यदि गीता को सुनने से ही मुक्ति मिलती तो गीता को पढ़ने व सुनने वाले तो कब के मुक्त हो गए होते और उनको कोई डर, भय नहीं होना चाहिए था। यह गीता जिसको सुनने से मुक्ति मिलती है, वह हर मनुष्य के घट में है। जो अपने घट में राम नाम यानी शब्द, नाद, अनहद को सुनता है और सतगुरू से मार्गदर्शन लेकर अपने घट में उसका अनुभव कर लेता है वह जीवित इसी शरीर में रहते हुए जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त कर सकता है।

तो प्यारे पाठकगण। यदि आप अपना जीवन सुंदर बनाना चाहते है तो हमेशा अपने विचार ऊंचे व आशावादी रखो। नफरत, ईर्ष्या, द्वेष से बचो। प्रारब्ध कर्म को भोगते हुए ऐसा कोई काम न करो जो तुम्हारे कर्मो को बढ़ाए। अपनी नीयत शुद्ध करो और सतगुरू की शरण लेकर, सुरत शब्द योग सीखकर अपना जीवन सुंदर बनाओ। उसकी कृपा से सब काम सहज ही हो जाते हैं।

विश्वास, सिद्धि व चमत्कार

इस संसार में विश्वास व आस्था के बिना कोई सफलता नहीं मिलती है। यह दुनिया एक दूसरे के विश्वास के सहारे ही चल रही है। यदि किसी डाक्टर पर आपका विश्वास नहीं है तो उसकी दवाई आपको ठीक नहीं कर सकती है। इसी प्रकार यह धर्म विश्वास की जड़ पर ही खड़ा हुआ है। अगर आपका विश्वास नहीं है तो आपको सफलता नहीं मिल सकती है। शास्त्रो में भी कहा गया है –'विश्वासम् फलदायकम्'।

अब यह विश्वास मोल तो मिलता नहीं है तो प्रश्न यह है कि विश्वास किस पर किया जाए? अब यह तो आपके मन व बुद्धि पर ही निर्भर करता है। जिसके आचरण, व्यवहार व विशेषता पर मनुष्य की बुद्धि यह मान जाती है कि यह सही है तो धीरे–धीरे वह उसके प्रति खिच जाता है और यह खिंचाव या प्रेम ही धीरे–धीरे आस्था व विश्वास में बदल जाता है।

इस लोक में सिद्धि सफलता के लिए एक इष्ट बना लो, यह आपकी मर्जी है कि आप राम को इष्ट मानो, किसी देवी–देवता को या किसी गुरु पीर को। परंतु आस विश्वास से काम करो। आपके सब काम होते जाएंगे। जो आज राम को पूजता है, कल कृष्ण को पूजता है, तीसरे दिन देवी को तो चौथे दिन गुरु को। ऐसे आदमी की पुकार कोई नहीं सुनता। एक पर निश्चय रखो और उसे पूर्ण मानो क्योंकि :

'एक ही साधे सब सधे'।
सब साधे सब जाये॥

अर्थात् जिस एक इष्ट पर आपका विश्वास हो उसे मन में रखकर ऐसे मानो–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,

त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या-द्रविणम त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव-देव॥

अर्थात् तुम ही मेरे माता-पिता हो, तुम ही मेरे भाई, रिश्तेदार व सखा हो, तुम ही मेरी विद्या व धन हो। तुम ही मेरे सब देवताओं के देवता हो। यानी मेरे सब कुछ आप ही हो। भाव यह है कि उस एक रूप को सब कुछ व पूर्ण मानकर उसे मन में रखो और उस पर पूरा भरोसा करो। इससे आपके संसार के सब काम आपके भले में होते जाएंगे। परंतु याद रखना इससे आपको सदा रहने वाली शांति नहीं मिलेगी क्योंकि वह इष्ट देव जिसे तुम अपने मन से मानते हो वह तुम्हारा अपना ही मन है। यह जितनी तुम अपने इष्ट देव से मन्नत मांगते हो या जिसे इष्ट का स्वरूप प्रकट होता है और वह इष्ट का स्वरूप तुम्हारे काम पूरे कर देता है, वह सब तुम्हारी मन की आस्था व विश्वास ही है जो तुम्हारा मन उस रूप को प्रकट कर लेता है। वह असली मालिक या राम नहीं है। यह शक्ति तुम्हारे ही मन की है। किसी एक इष्ट पर आस्था व विश्वास होने पर वह इष्ट का स्वरूप प्रेम में भाव विभोर होने पर प्रकट हो सकता है या फिर किसी भय व डर की स्थिति में मन के एकाग्र होने पर वह रूप प्रकट होकर मदद कर देता है। लेकिन यह सत्य नहीं है क्योंकि वह रूप स्वयं वहा नहीं आता अपितु आपका ही विचार, आपका ही मन उस इष्ट का स्थूल रूप धारण कर आपकी सहायता कर देता है। अत: असली सहायक तुम्हारा अपना ही मन का संकल्प है।

यह मेरा रोज-रोज का अनुभव है कि जो लोग मुझ पर विश्वास रखते है, उनमें मेरा रूप प्रकट होकर उनका मार्ग प्रदर्शन करता है, उनकी तरह-2 की मदद करता है और किसी को मरते समय अपने साथ ले जाता है जबकि मैं किसी के अंदर नहीं जाता तो मैं मानने को मजबूर हो गया है कि असली शक्ति मनुष्य के मन में

है जो अपने भाव के अनुरूप उस रूप को प्रकट कर लेती है। रामायण में इस बात को ऐसे लिखा है-

जाकी रही भावना जैसी
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी॥

मुझ से पहले मेरे गुरु महाराज पण्डित फकीरचंद जी के शिष्यों में उनका रूप प्रकट होकर उनकी तरह-तरह की मदद करता था और वे अपने सत्संगों में स्पष्ट कहते थे कि मैं कहीं नहीं जाता हूं। इंसान के मन में ही वह ताकत है जो वह उस रूप को प्रकट कर लेता है।

तो बात स्पष्ट है कि ये जितने भी चमत्कार घटित होते है ये सब मनुष्य की आस्था व विश्वास से ही होते है। किसी देवी-देवता व गुरु में यह ताकत नहीं है। असली ताकत मानने वाले में है। मैं एक बार जींद में किसी भक्त के घर गया, घर देखकर मैंने कहा कि आपने बहुत सुंदर मकान बनाया है ऐसे घर तो शायद ही स्वर्ग में मिले। उसने कहा-महाराज जी, यह सब आपकी कृपा से ही बना है। मैंने कहा- अगर मेरी कृपा से यह बनता तो पहले मैं अपना मकान तो ऐसा बना लेता। इसी प्रकार जयपुर की एक स्त्री को मेरे प्रसाद से 12 वर्ष बाद पुत्र उत्पन्न हो गया जिसे डाक्टरों ने जवाब दे दिया था। लेकिन मैं कहता हूं कि अगर मेरे में यह ताकत होती तो मेरे प्रसाद से मेरे पुत्र के भी पुत्र होना चाहिए था जिसकी तीन लड़कियां है। इसलिए मै कहता हूं कि मनुष्य की श्रद्धा व विश्वास से ही ये सब चमत्कार घटित होते है। जिस रूप में मनुष्य की श्रद्धा व विश्वास है, वही रूप मनुष्य में प्रकट होकर उसका काम कर देता है। यदि राम, कृष्ण में विश्वास है तो राम, कृष्ण का रूप प्रकट होगा। किसी देवी-देवता में विश्वास है तो उसका मन उनका रूप बना लेगा और यदि किसी गुरु पीर में विश्वास है तो उसका रूप बनाकर उसकी सहायता कर देगा।

अब ये बात बताने के लिए राम, कृष्ण व देवी-देवता तो आएंगे नहीं क्योंकि वे उनके अंतर में प्रकट होने कहीं बाहर से नहीं आते हैं अपितु यह शक्ति उनके अपने ही अंतर समाहित है। आज के गुरु पीर जो टेलिवीजन व आश्रमों में सत्संग देते हैं, वो भी अपने भक्तों को यह सच्चाई नहीं बता रहे है। आश्रमों में बढ़ती हुई भक्तों की भीड़ का यही एक मुख्य कारण है। वे सोचते है कि उनके साथ घटित चमत्कार व कार्य सिद्धि उनके गुरु की कृपा से ही हुआ है। मैं आपके भ्रम व शंका को दूर करने के लिए इसका रहस्य खोलकर बताता हूं ताकि आप जगह-2 न भटको। सच्चाई यही है कि आपका मन ही उस रूप को जिसमें आपका विश्वास है, प्रकट कर लेता है।

यह लोक जिसमें हम जी रहे है, संकल्पमय है यानी जैसे-2 आपके विचार होंगे वैसा ही आपका जीवन बन जाएगा। इसलिए इस संसार में यदि आप सुखी जीवन जीना चाहते है तो हमेशा शिव संकल्प रखो। इस लोक में सुखी जीवन जीने की यह कुंजी (चाबी) है। यह इच्छा या चाह का लोक है जैसे 'जहां चाह, वहां राह'। अत: किसी ज्ञानी व जीवित मुक्त महापुरूष की संगत से मनुष्य को जीवन जीने का ढंग आ जाएगा और उसका जीवन सुंदर व सुखमय बन जाएगा।

योग्य संतान उत्पत्ति

आज विज्ञान ने काफी क्षेत्र में उन्नति की है। तरह-तरह की फसल, तरह-तरह के बीज, खाद इत्यादि में किसान को काफी लाभ मिला है। हर क्षेत्र में मनुष्य को सब भौतिक सुविधाएं उपलब्ध है लेकिन इतना होने पर भी वह दुखी है और अधिकतर अपनी संतान से दुखी है। इसका कारण यह है कि आज की संतान अधिकतर कामुकता की है। पति-पत्नी अपने स्वाद के लिए Sex भोगते है और संतान आ जाती है और वे संतान चाहते नहीं है तो ऐसी अनचाही संतान से उन्हें कभी सुख नहीं मिल सकता है। इसलिए संतान की प्राप्ति के लिए उन्हें अच्छे विचार व इच्छा रखकर ही संतान उत्पन्न करनी चाहिए क्योंकि मां जैसे विचार रखती है वैसी ही संतान उसके गर्भ में आ जाती है।

जीव के शुभ-अशुभ कर्म मां के गर्भ में पड़ते ही शुरू हो जाते है। जैसे बताया है कि यह लोक संकल्प का है। मां के जैसे विचार होंगे वैसी ही आत्मा उसके गर्भ में आएगी। यदि मां चाहती है कि उसकी संतान उसे सुख देने वाली व आज्ञाकारी हो तो वैसी ही संतान उसके विचारों के अनुसार खिंच कर उसके गर्भ में आ जाएगी। जब बच्चा मां के गर्भ में आ जाता है तभी से ही वह शिक्षा लेना शुरू कर देता है क्योंकि बच्चा मां के खून से बनता है। मां के जैसे विचार भाव होंगे वैसे ही उसके विचार भाव होंगे। उदाहरण के तौर पर इतिहास में यह कथा आती है कि एक बार शत्रु से परास्त होकर जब हुमायूं जंगल में रह रहा था तो उसकी बेगम जमीन पर अपने हाथ से एक नक्शा बना रही थी। जब बादशाह ने पूछा कि बेगम, यह क्या कर रही हो? तो उसने उत्तर दिया कि मैं यह नक्शा बना रही हूं कि मेरा बेटा इतनी दूरी तक इस देश में राज करें और उसके विचारानुसार उनके बेटे अकबर बादशाह ने वहां तक राज किया। इसी प्रकार

महाभारत में अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की कथा तो सब जानते है कि उसने अपनी मां के पेट में ही चक्रव्यूह बेधना सीख लिया था। इसी आधार पर मैंने इस ज्ञान के साथ जो संतान उत्पन्न करवाई है, वह उसकी दूसरों संतानों से भिन्न हुई है। यह मेरे हर रोज के अनुभव है।

तो बात स्पष्ट है कि जिस विचार भाव से हम संतान उत्पन्न करते है, वे ही गुण संतान में आ जाते है। जब बच्चा मां के गर्भ में आता है तब मां जो जो काम करेगी वे संस्कार बच्चे में सहज में आ जाएंगे। जैसे मां सफाई पसंद है तो बच्चा भी सफाई पसंद होगा। मां अधिक क्रोध करती है तो बच्चा भी क्रोधी होगा, मां यदि पति व सास से झगड़ा करेगी तो बच्चा भी झगडालु होगा। मां चोरी करेगी तो बच्चा भी चोरी करने को मजबूर होगा। यह सब खेल संस्कारों का है। जैसे आजकल बेटियां टेलीविजन देखती है तो वहां से जो संस्कार वे ग्रहण करती है, वहीं संस्कार बच्चे में आ जाते हैं। जवान बेटियों को उनकी मां, दादी, नानी यह रहस्य समझा सकती है। दूसरा, लड़कियों के स्कूल-कॉलेजों में मेरी लिखी पुस्तक 'सुखी जीवन का रहस्य' पाठयक्रम में लगाकर अध्यापकगण यह योग्य संतान उत्पति का ज्ञान दे सकते हैं।

आज जो हम नई पीढ़ी में कमी देखते हैं वह हमारे संतान उत्पति के अज्ञान का कारण है। मनुष्य जीवन में 50 प्रतिशत गुण-अवगुण माता-पिता के तथा 50 प्रतिशत पीछे की 50 प्रतिशत पीढ़ी तक दादा-दादी, नाना-नानी के होते है। फिर आगे क्रियमान् कर्म संगत से बनते रहते है।

अत: यदि हम संतान से सुख चाहते है या समाज में कुछ सुधार लाना चाहते हैं तो इसका उत्तम तरीका यही है कि माता-पिता शुभ व कल्याणकारी विचारों से संतान पैदा करें और परमात्मा से यह याचना करें कि हमें योग्य, आज्ञाकारी व सुख देने वाली संतान हो। सुयोग्य संतान पैदा करने की जड़ यही है कि माता-पिता संतान पैदा

होने से पहले यह उपरोक्त विचार रखें और आपस में प्रेमभाव से रहें। अपने से बड़ो का हमेशा आदर करें और उनसे आशीर्वाद लें। उनके आज्ञाकारी बने। बेटा, बाप का आदर सम्मान करे, बहु, सास का, दाद-सास का आदर-सत्कार करें।

याद रखना कि आप अपने बड़ों के आज्ञाकारी नहीं है और उनका आदर-सत्कार नहीं करते हैं तो आपकी संतान भी आपको सुख नहीं देगी। यहां देने लेने वाला यानी give and take का सिद्धांत काम करता है। जैसा आप दोगे वैसा ही आपको मिलेगा। आप अपने माता-पिता व बड़ों का आदर सत्कार करोगे, वही आपको मिलेगा। लोग सुख चाहते है परंतु अज्ञान यह है कि सुख देते नहीं है। संतान उत्पति के विषय में एक खास बात ध्यान रखने वाली यह है कि बेटियां यदि ये चाहें कि उनके बच्चे चरित्रवान् बने तो जब बच्चा गर्भ में हो संभोग न किया जाए क्योंकि जब बच्चा मां के गर्भ में हो और मां-बाप विषय भोग करते रहे तो वह बच्चा समय से पहले कामी बन जाएगा। आजकल माता-पिता की अनुमति के बिना किए जाने वाले प्रेम विवाह इसके ज्वलंत उदाहरण है।

अत: सुयोग्य संतान की उत्पति व सुख प्राप्ति के लिए अच्छे व उत्तम विचार रखने चाहिए और जो परहेज बताए गए है उनका पालन करना चाहिए। आज समाज में सुधार लाने के लिए यही एक उत्तम तरीका है कि बीज रूप से पीढ़ी को बदला जाए। जैसे पेड़ को हरा-भरा रखने के लिए उसके मूल में पानी डालना आवश्यक है उसी प्रकार इस योग्य संतान उत्पति के ज्ञान से नई पीढ़ी में बदलाव लाया जा सकता है। जैसे मेरे गुरु महाराज जी ने कहा था कि ''राष्ट्र का निर्माण माताएं करती हैं न कि नेता'' और यह सब ज्ञान मनुष्य को एक अनुभवी पुरूष ही दे सकता है।

सुखी जीवन जीने की कला

आज चारों तरफ मनुष्य अशांत ही अशांत नजर आ रहा है। चाहे वह मिनिस्टर है, ऑफिसर है, क्लर्क है या चपरासी है। मेरे पास सुबह से शाम तक लोगों के दुख व तकलीफ के फोन आते रहते हैं तो मैं सोचता हूं कि मनुष्य कितना अज्ञानी है जो इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर भी दुखी है। रामायण में तो यहा तक लिखा है कि-

'बड़े भाग मानुष तन पाया।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन गावा।'

अत: ऐसे अमूल्य मनुष्य जन्म को पाकर भी यदि मानव दुखी है तो उसका कारण यही है कि उसे अज्ञान के कारण जीना नहीं आता। अगर उसे जीना आ जाए तो वह अपना जीवन खुशी, उमंग व उत्साह से व्यतीत कर सकता है क्योंकि मैंने आज तक ऐसा जीवन जीया है और आज 87 साल की आयु में भी मेरे अंदर एक नौजवान जैसा हौसला व उमंग है। मैं अपने आपको दिनभर व्यस्त रखता हूं। जीवन जीने का यह भेद मनुष्य को सत्संग में मिलता है और सत्संग भी उसका जो स्वयं इस रहनी में रहता है।

मैं अधिकतर प्रवृति मार्ग का सत्संग देता आ रहा हूं कि इस लोक को सुंदर कैसे बनाया जाए और इसका सबसे उत्तम तरीका यही है कि अगर आप सुख चाहते है तो दूसरों को सुख देना शुरू कर दो क्योंकि यहां सिद्धांत देने और लेने का है। जैसे किसान खेत में जो बीज बोता है वहीं फसल उसे मिलती है। अत: आप जहां भी रहते हैं, घर में है तो मन, वचन व कर्म से घरवालों को सुख दें और जहां काम करते हैं जैसे खेत, दुकान, दफ्तर, सेना, पुलिस इत्यादि में तो जिन लोगों के साथ आपका संबंध है, उनको अपनी योग्यतानुसार सुख दो। आप पर हमेशा सुख व खुशी की वर्षा होती रहेगी। मनुष्य तो अज्ञानी है इसलिए वह मन, वचन व कर्म से दूसरों को दुख देता

रहता है और चाहता है सुख। कबीर जी कहते हैं-

'बोये पेड़ बबूल के तो आम कहां से खाये।'

हम भारत में अधिकतर परिवारों में रहकर जीवन यापन करते है। दूसरों देशो में भी लगभग ऐसे ही जीवन है। आज परिवारों में कलह है। सास-बहू में, बाप-बेटे में, भाई-भाई में आपस में मनमुटाव रहता है और वे एक दूसरे के प्रति नफरत, ईर्ष्या व द्वेष का भाव रखते है जिससे घरों में शांति नहीं है और हमारे ये विचार हमारा नुकसान करते हैं तथा दुख व तकलीफ लाते है। आपस में प्रेम प्यार से रहने पर घर में खुशहाली आती है। अत: मनुष्य अपने ही विचारों से सुखी व दुखी होता रहता है। अगर हम घरों में अपने बड़े बुजुर्गो व माता-पिता का सम्मान नहीं करते, उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते और कड़वे वचन बोलकर उनका दिल दुखाते है तो सुख की आशा कैसे कर सकते है। माता-पिता तो मनुष्य के सबसे पहले गुरु है जो उसे जीवन देते हैं और हर तकलीफ सह कर उसका पालन-पोषण करते हैं और यह बात आपके शास्त्रों में भी लिखी हुई है कि -''मातृदेवो भव, पितृदेवो भव।'' अर्थात् माता-पिता को देवता का स्वरूप मानो। इस बात का ज्ञान मुझे अपने गुरु महाराज जी से हुआ।

मैं एक बार अपने गुरु महाराज पं. फकीरचंद जी के पास होशियारपुर गया हुआ था। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया और कहा कि जिस राम-नाम को पाने के लिए ऋषि-मुनि अपना पूरा जीवन लगा देते है वह तुम्हें पहले दिन ही प्राप्त हो गया है अत: घर जाकर अपने बाल-बच्चों को संभालो। उनके कहने के बावजूद भी मैं वहां एक दिन और ठहर गया और जब अगले दिन उन्होंने मुझे देखा तो पूछा कि तुम घर क्यों नहीं गए। मैंने कहा कि मैं आपकी कुछ सेवा करना चाहता हूं तो उन्होंने कहा कि यह सेवा घर में अपने माता-पिता की कर देना, वह मुझे मिल जाएगी। मां तो थी नहीं अत: मैंने उनकी आज्ञानुसार अपने पिता जी की जब तक वह जीये पूरी सेवा की,

उनके खाने का विशेष ध्यान रखना, भोजन सबसे पहले उन्हें परोसना, उनके वस्त्र व बिस्तर साफ-सुथरे रखना इत्यादि और इस सेवा से मैं पितृ ऋण से मुक्त हो गया।

यह संसार एक नाटकशाला है। यहां सब अपना-अपना प्रारब्ध कर्म भोगने व लेने-देने आते है। यहां कोई किसी का नहीं है, सब एक खेल है जैसे रंगमंच पर सभी पात्र अपना-अपना अभिनय अच्छे से करते हैं और दूसरे की अपेक्षा अपने आपको अच्छा अभिनेता सिद्ध करने की कोशिश करते हैं उसी प्रकार यदि केवल हर मनुष्य अपना सुधार कर लें और अपने कर्त्तव्य का पालन करें तो हम काफी हद तक सुखी रह सकते हैं क्योंकि आप सुखी तो जग सुखी। मैं अपनी पूरी आयु में न तो घर वालों को सीधा कर सका, न सेना में फौज को और न ही अपने किसी पड़ोसी को सीधा कर सका। हां, मैं सीधा हो गया तो मेरे लिए पूरी दुनिया सीधी हो गई और यही जीने का सरल नुस्खा है कि अपने आप को सही व पाक रखो, अपनी नीयत शुद्ध रखो, किसी का बुरा न चाहो तो तुम्हारा जीवन सुंदर बन जाएगा।

अपने आपको किसी न किसी काम में लगाए रखों क्योंकि खाली मन शैतान का घर होता है और वह व्यर्थ की बातें सोचने लगता है। काम में लगे रहने से मन चंचल नहीं होता और व्यर्थ व गंदे विचारों से बचा रहता है। इसलिए मनुष्य को किसी महापुरुष की शरण लेकर उसकी आज्ञा में रहना चाहिए ताकि उसका मन तरह-2 के ख्याल व संकल्प न उठाए। अनुभवी हाजिर महापुरुष मनुष्य की बुद्धि को सत्संग से निश्चयात्मक करके, ज्ञान देकर सब चिंता फिक्र से मुक्त कर सकता है।

शब्द

चल हंसा सतलोक हमारे, छोड़ो यह संसारा हो।
यह संसार काल है राजा, कर्म का जाल पसारा हो।

चौदह खंड बसे जाके मुख, सबका करत आहारा हो॥
जार बार कोयला कर डालत, फिर-2 ले अवतारा हो।
ब्रह्मा, विष्णु तन घर आये, और कौ कौन विचारा हो॥
सुर नर मुनि सब छल बल मारे, चौरासी में डारा हो।
मध्य आकाश आप जहां बैठे, ज्योति शब्द उजियारा हो॥
सत स्वरूप शब्द जहां फूले, हंसा करत बिहारा हो।
कोटि सूर चंद्र छिपि जैहि, एक-2 रूप उजारा हो॥
वहीं पर एक नगर बसत है, बरसत अमृत धारा हो।
कहे कबीर सुनो धर्मदासा, लखो पुरूष दरबारा हो॥

यह शब्द कबीरदास ने उन साधु-संतो के लिए लिखा है जिनको यह संसार दुख का घर अनुभव में आया यानी जिनको यहां अपने ही अशुभ कर्मो के अनुसार दुख ही दुख का अनुभव हुआ है। हमारे देश में बहुत से ऋषि, मुनि हुए हैं जिनमें चार विशेष है- मनु, भृगु, वशिष्ठ और व्यास। पहले तीनों ने इस संसार को मायामय बताया है कि यहां सब कुछ माया है, सत्य कुछ नहीं है। महर्षि व्यास जी ने बताया कि यदि तुम सदा के लिए सुख-शांति चाहते हो तो योग साधन करके वहां का अनुभव कर लो ताकि तुम्हारा आवागमन ही न हो। यह शरीर त्यागने पर जहां से यह मनुष्य की सुरत आकर यहां माया के जाल में उलझ गई है, इससे सदा के लिए छुटकारा हो जाएगा। परमात्मा ने सतगुरू का रूप धारण करके उन सज्जनों के लिए परम आनंद और परम शांति का मार्ग खोल दिया है जो इस संसार के जीवन को दुख व कष्ट का मान रहे थे यानी जिनको वैराग हो गया था। तब से मनुष्य को अंदर में घट का साधन बताकर अमरापुरी या अवगति का मार्ग बता दिया है।

अत: यदि मनुष्य अपने घर को स्वर्ग बनाकर सुखी जीवन बिताना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह देवता के गुण ले जो सबको सुख देता है। उसे अपने माता-पिता व परिवार को सुख देने वाला और आज्ञाकारी होना चाहिए। उसे चाहिए कि वह मनुष्यों का, समाज का, देश का एक बहुत ही आदर्श नागरिक बने। अपने खुद के स्वार्थ के लिए दूसरों को दुख न दे। घर-परिवार में जिनके साथ उसका संबंध है, उन सबको सुख दे। हेरा-फेरी छोड़कर एक आदर्श मानव बने। अपनी रोजी-रोटी ईमानदारी से कमाए। अपनी आमदनी से अधिक खर्चा न करे। घटिया विचार का फल मैंने पहले ही लिख दिया है। अत: कभी भी स्वप्न में घटिया न सोचे। लेने देने का सिद्धांत भी पहले लिख दिया है। अत: किसी को दुख न दे। जो कुछ देगा वही बदले में मिलेगा। इसके लिए दाता दयाल का एक शब्द लिखता हूँ :

शब्द

बुद्धि जब तुमको मिली, मिल जुल के रहना सीख लो।
द्वेष तजकर प्रेम की, युक्ति का गहना सीख लो।।

भाइयों से बैर त्यागो, मित्रता का भाव लो।
मुख से मीठे और मधुर, वचनों का कहना सीख लो।।

लड़ते-लड़ते हो गए हो, अब निबल सोचो भी कुछ।
यह दशा अच्छी नहीं, सुमती की लहना सीख लो।।

ऐसा हो व्यवहार जिससे, सुख मिले और शान्ति।
कौन कहता है कि दुख सागर में बहना सीख लो।।

परमदयाल जग में आए, प्रेम का परिचय दिया।
मेल का साधन हो मिलजुल के, निबाहना सीख लो।।

मानव जीवन का ध्येय

मनुष्य इस संसार में आकर अपने कर्मो के अनुसार सुख दुख भोगता है और फिर यहां से चला जाता है। वह हर रोज दूसरे जीवों को मरते हुए देखता है लेकिन फिर भी उसे कभी यह ख्याल नहीं आता कि वह यहां क्यों आया है? उसे कहां जाना है और उसके जीवन का ध्येय क्या है?

मनुष्य का असली ध्येय समस्त दुखों से छुटकारा पाकर सुख-शांति का जीवन व्यतीत करना है। इस संसार में हर आदमी सुख चाहता है, चाहे वह छोटा है या बड़ा और इस सुख की तलाश में ही वह इधर-उधर भटकता फिर रहा है। कोई अपनी पत्नी में सुख ढूंढता है तो कोई पुत्र प्राप्ति में। कोई धन-दौलत व शान शौकत में सुख देखता है तो कोई ऊंचे पद की प्राप्ति में और कोई संसार के दुख से दुखी होकर जप,तप, दान, पूजा, पाठ, साधन, अभ्यास इत्यादि में सुख खोज रहा है। लेकिन उसे इस बात का ज्ञान नहीं है कि वह स्वयं ही सुख का भण्डार है। संपूर्ण सुख का खजाना उसके अंदर ही भरा हुआ है। जैसे दाता दयाल ने लिखा हुआ है-

शब्द

ढूंढ मुझको अपने मन में, मैं तो तेरे पास हूं।
मैं न काशी हूं न मथुरा, मैं न गिरि कैलास हूं॥

तू हुआ मेरा तो मैं भी, देख तेरा बन गया।
कर भरोसा मेरा मैं ही, तेरी सच्ची आस हूं॥

तेरे भीतर मेरी बैठक, आंख से ले देख अब।
मैं नहीं पृथ्वी की मूरत, मैं नहीं आकाश हूं॥

किस भ्रम में है पड़ा, निरभ्रान्त चित से शांत हो।

आप हूं मैं योग युक्ति, आप शब्द अभ्यास हूं॥

सतगुरू का नाम लें, और नाम में विश्राम ले।
सुख ले आनंद मुझसे, मैं ही सुख की रास हूं॥

मनुष्य स्वयं पूर्ण है क्योंकि पूर्ण परब्रह्म का अंश उसमें मौजूद है। जो उसके पिण्ड में है वहीं ब्रह्मण्ड में है जैसे :'पिण्डे सो ब्रह्मण्डे'। इशोपनिषद् के मन्त्र में यह बात स्पष्ट लिखी है।

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदम्, पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।

अर्थात् वह परमात्मा पूर्ण है और उसका यह संसार भी पूर्ण है क्योंकि जो पूर्ण से निकला है वह भी पूर्ण होगा। जैसे सागर जो जल का भण्डार है उसमें से कुछ जल अलग कर दिया जाए तो उस जल में भी वही गुण होंगे जो सागर के जल में है। इसी प्रकार इंसान पूर्ण है क्योंकि वह पूर्ण का अंश है। इसमें कोई कमी या अपूर्णता नहीं है।

अब यह मनुष्य की अज्ञानता ही है कि वह अपने आपको उससे अलग मानकर तरह-तरह के दुख व संकट उठा रहा है। वह वास्तव में स्वयं सत् चित आनंद का स्वरूप है। शरीर, मन, आत्मा व सुरत इन चारों तत्वों के मेल से यह पूर्ण मानव बनता है। सत् हमारा शरीर है जिसका भोजन खाद्य सामग्री है। जैसे अन्न, फल, सब्जियां, दूध इत्यादि। इनमें अलग-अलग विटामिन होते हैं जो शरीर को स्वस्थ रखते हैं। यह खाद्य सामग्री पृथ्वी की गर्मी व ऊपर सूक्ष्म लोक के ग्रहों के प्रकाश से पैदा होती है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए उचित भोजन की आवश्यकता है।

चित् हमारा मन है जिससे संकल्प व विचार उत्पन्न होते रहते हैं। इसके ऊपर देखी, सुनी,पढ़ी व छुई हुई बातों की छाप पड़ती रहती है जो संस्कार बन जाते है। ऊपर के ग्रहों के प्रकाश से ये विचार व भाव पैदा होते रहते हैं और पानी के बुलबुले की तरह पुराने संस्कार

मिटते रहते हैं और नए पैदा होते रहते है। कुछ संस्कार बढ़िया होते हैं जिनसे मनुष्य को खुशी, प्रसन्नता व उत्साह मिलता है। कुछ घटिया होते है, जिनसे मन दुखी, चिंतित व उदास हो जाता है। कुछ विचार, भाव अधिक देर तक रहते हैं जिनसे मानव खेलता रहता है और कुछ थोड़ी देर तक रहते है जिनको मानव जल्दी भूल जाता है। जिन घटिया या बढ़िया विचारों से मनुष्य अधिक देर तक खेलता है, वे ही कर्म बन जाते है और समय पर अपना प्रभाव दिखाते है।

संक्षेप में मन है- "Combination of impressions and suggestions" यानी सलाह या राय जिसे हम सच मानते हैं और मन पर बाहर के प्रभाव जो देखने व सुनने से मन पर असर डालते हैं जिनको हम भला या बुरा मानते हैं, वैसा ही हम सोचते या विचारते है। जो मनुष्य अधिक देर तक उस विचार से खेलता है वह उसका कर्म बन जाता है और समय पर वह रंग लाता है। इस मन का भोजन है सुंदर व आशावादी विचार रखना तथा खुश व प्रसन्नचित रहना और मन को ऐसा रखने के लिए सत्संग व इष्ट का ध्यान आवश्यक है।

आनंद हमारी आत्मा है जिसका स्वरूप प्रकाश है। हम जो भी बाहर-भीतर आनंद का अनुभव करते हैं, वह सब आत्मा का है क्योंकि आत्मा की खुराक आनंद है। ध्यान योग में ध्यान के समय अपने अंतर सफेद प्रकाश के अनुभव में आंतरिक आनंद है। परंतु जिन सज्जनों ने अपना शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य नष्ट किया हुआ है उनको यह प्रकाश रूपी आनंद नहीं आएगा। अतः इसके लिए किसी अनुभवी महापुरूष के मार्गदर्शन की आवश्यकता है। ज्यादा जोर लगाने पर दिमाग का संतुलन बिगड़ सकता है।

इन तीनों के ऊपर चौथा तत्व है सुरत जो इन तत्वों को देखने वाला अर्थात साक्षी है। संतों ने समझाने के लिए इसका नाम होश, चेतनता व ध्यान रखा है। मनुष्य में यह सब खेल सुरत तत्व का है।

यह परमात्मा का छोटा सा अंश है। एक छोटी सी किरण है जिसके शरीर से निकलते ही सब खेल खत्म हो जाता है। इस सुरत को अनुभव ज्ञान से जाना जाता है। जैसे कबीर साहब ने संक्षेप में कहा है–

कबीरा देश वह न्यारा, लखे कोई नाम का प्यारा।
न योगी योग से पावे, न तप सी देह जल जावे॥

जिस मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा समता में रहते हैं, वही आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है और नाम के अधिकारी भी वहीं है। जैसे स्वामी जी महाराज की वाणी है–

'नाम रहे चौथे पद माहीं, ये ढूंढे त्रिलोकी माही।'

वह नाम की धुन हर समय घट में अपने आप होती रहती है। केवल सुरत से उस धुन को सुनना ही सुरत शब्द योग कहा जाता है। सुरत शब्द को सुनते–2 इसी में लीन हो जाती है फिर मैं और तू का भेद समाप्त हो जाता है जैसे–

तन थिर, मन थिर सुरत निरत थिर होय।
कहे कबीर उस पलक को कल्प सके न कोय॥

कबीर साहब का भी यही कथन है

बुन्द समाना सिन्ध में, यह जाने सब कोय।
सिंध समाना बून्द में, विरला जाने कोय॥

जैसे आम की गुठली में पूरे आम का वृक्ष बनने का सारा सामान कुदरती रूप से मौजूद रहता है, कही बाहर से नहीं आता उसी प्रकार पूर्ण पुरूष के अंदर भी पूर्णता का सारा सामान प्राकृतिक रूप से मौजूद रहता है। केवल बाहरी मार्ग निर्देशन की आवश्यकता है। बाहरी गुरू से मनुष्य ज्ञान लेकर सुरत शब्द के सहज साधन से जीवन

को खुशी–2 व सुख शांति में जीते हुए अपने आपके स्वरूप को जान जाता है।

अत: इस अध्यात्म ज्ञान का सार यही है कि मानव धर्म की शरण लेकर इस लोक का जीवन सब आधुनिक सुख सुविधाओं का लाभ लेते हुए, रोज का जीवन पर्व या त्यौहार की तरह व्यतीत करते हुए अपने निज रूप का अनुभव करके जीवनमुक्त अवस्था को प्राप्त करें। जैसे–

'आवागमन से गए छूट के सुमिर नाम अनिवासी हो।'

अब यह अविनाशी नाम क्या है? जिसके सुमिरन से सदा के लिए मनुष्य का आवागमन मिट जाता है। यह मनुष्य का निज रूप है यानी मानव की सुरत है। इस सुरत का सहज अनुभव ही अविनाशी नाम का सुमिरन है। यह अनुभव का विषय है। यह अविनाशी नाम मनुष्य के अंदर विराजमान है। शेष जितने सहारे और मान्यताएं मनुष्य ने मान रखी है और उनका सहारा आस–विश्वास से लिया हुआ है वे इस काल लोक में ठीक है पंरतु मानव की सुरत जब शरीर छोड़कर यहां से जाएगी तब इसका कोई साथ नहीं देगा केवल यह अविनाशी नाम जो मनुष्य का निज नाम या स्वयं है वही इसके साथ जाएगा और वही इसका हर समय इस काल और माया के लोक में सहायक है। बाहर, भीतर वही इसका रक्षक है। अत: इस अध्यात्म ज्ञान का यही लाभ है कि वह इस सुरत शब्द योग के साधन से खुद अनुभव करके जान लें कि वह कौन है। इस अनुभव से उसकी भटकन छूट जाएगी और सब भ्रम दूर हो जाएंगे और वह स्वयं ब्रह्मं रूप हो जाएगा। जैसे इस शब्द में लिखा है–

मेरा सत् चित् आनन्दरूप कोई कोई जाने रे।

द्वैत वचन का मैं हूं सृष्टा, मन वाणी का मैं हूं दृष्टा,
मैं हूं साक्षी रूप कोई–2 जाने रे।

पंच कोष से मैं हूं न्यारा, तीन अवस्थाओं से भी न्यारा,
अनुभव सिद्ध अनूप, कोई कोई जाने रे।

सूर्य चन्द्र में तेज मेरा है, अग्नि में भी ओज मेरा है,
मैं हूं अद्वैतस्वरूप, कोई-2 जाने रे।

जन्म मृत्यु मेरे धर्म नहीं है, पाप-पुण्य कुछ कर्म नहीं है,
अज निर्लोपी रूप, कोई-2 जाने रे।

तीन लोक का मैं हूं स्वामी, घट-2 व्यापक अन्तर्यामी,
ज्यों माला में सूत, कोई-2 जाने रे।

राजेश्वर निज रूप पहिचानो, जीव-ब्रह्म में भेद न जानो,
तू है ब्रहमस्वरूप, कोई-2 जाने रे।

गुरु की आवश्यकता

मनुष्य संसार के समस्त प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ जीव है क्योंकि अन्य प्राणी तो केवल भोग भोगने आते हैं, वह कुछ करना चाहें तो कर नहीं सकते जबकि मानव बुद्धिमान् जीव है। वह अपनी बुद्धि के बल पर जो चाहे वह कर सकता है क्योंकि वह स्वयं उस मालिक का ही रूप है लेकिन किसी भी कार्य को करने के लिए उसे बाहरी मार्ग निर्देशन करने वाले गुरू की आवश्यकता रहती है। बचपन में माता-पिता उसके गुरू होते हैं जो उसे शिक्षा देकर बड़ा करते है। अब जैसी-2 उसे शिक्षा मिलती है, वह वैसा-2 ही बनता जाता है। बड़ा होने पर दुनिया के किसी भी क्षेत्र में वह काम करता है तो उसे वह काम किसी से सीखना पड़ता है तभी वह उस काम को करने के योग्य हो सकता है।

इसी प्रकार अध्यात्म मार्ग में गुरु की सख्त आवश्यकता है। लेकिन आजकल गुरुओं के पाखंडी रूप को देखकर लोग गुरु के नाम से डरने लगे है और कुछ लोग तो यहां तक भी कहते हैं कि वह परमात्मा तो निराकार है, अपने अंदर ही है, उसके लिए बाहरी गुरु की आवश्यकता ही क्या है? यह उनकी भारी भूल है। क्योंकि आप देखते हैं कि दुनिया के किसी भी क्षेत्र का कोई भी कार्य चाहे वह काम कुम्हार का है, लुहार का है, सुनार का है, शिक्षा का है या किसी और चीज का है वह बिना सीखें नहीं आ सकता है। जैसे - अगर आपने बच्चे पढ़ाने हैं तो उन्हें स्कूल व कॉलिज भेजना ही पड़ता है यह जानने पर भी कि आजकल अध्यापकगण ठीक से पढ़ाते नहीं है। इसी प्रकार डाक्टर आजकल ठीक ईलाज नहीं करते, रोगी से खूब पैसा लूटते है। लेकिन फिर भी रोग आने पर रोगी को डाक्टर के पास जाना ही पड़ता है। केवल पुस्तक के अध्ययन से पूर्ण शिक्षा की प्राप्ति व रोग का निदान नहीं हो सकता है। फिर यह कैसे संभव हो

सकता है कि इतना बड़ा ज्ञान बिना गुरु के प्राप्त हो जाए?

अगर कोई सांसारिक दुखों से हमेशा के लिए छुटकारा पाना चाहता है तो उसे किसी अनुभवी गुरु की शरण लेनी ही पडेगी। हां, मूर्ति वाला इष्ट आपकी इच्छा व मनोकामना को पूर्ण कर सकता है लेकिन मूर्ति आपका पथ-प्रदर्शन नहीं कर सकती। पथ प्रदर्शन तो जीवित अनुभवी पुरुष ही कर सकता है और वह भी गृहस्थी क्योंकि गृहस्थी पुरुष आपकी गृहस्थ संबंधी समस्याओं को अच्छी तरह समझ सकता है और अपने अनुभव के आधार पर उसका निदान कर सकता है। वह हमारा लोक परलोक दोनो बना सकता है। गुरु महिमा पर तो हमारे शास्त्र भी प्रमाण हैं। जैसे -

गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।
बलिहारी वा गुरु की, जिन गोविन्द दियो मिलाय॥
गुरुर्बह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः॥

ब्रह्मानन्द जी ने भी अपने शब्द में कहा है कि गुरु के पास जाने पर ही यह ज्ञान मिलता है। जैसे

अगर है ज्ञान को पाना तो गुरु की शरण जा भाई।
जटा सिर पर रखाने से, भस्म तन में रमाने से।
सदा फल मूल खाने से, कभी नहीं मुक्ति को पाई॥
बने मूरत पुजारी है, तीरथ यात्रा पियारी है।
करें व्रत नेम भारी है, भरम मन का मिटें ना॥
कोटि सूरज शशी तारा, करे प्रकाश मिल सारा।
बिना गुरु घोर अंधियारा, न प्रभु का रूप दरसाई॥
ईश सम जान गुरुदेवा, लगा तन मन करो सेवा।
ब्रह्मानन्द मोक्ष पद मेवा, मिले भव बन्ध कट जाई॥

संत कबीर ने भी गुरु को ही सब कुछ माना है जैसे-

गुरु बिन ज्ञान न उपजे, गुरु बिन मिले न मोक्ष।
गुरु बिन लखे न सत्त को, गुरु बिन मिटे न दोष॥
हरि सेवा युग चार है, गुरू सेवा पल एक।
ताके पट तर न तुले, सन्तन कियो विवेक॥

अतः बाहरी गुरु सुन्दर ढंग से इस जीवन का आनंद लेते हुए सुख शांति से जीवन जीने का भेद बताकर सहज विधि से उसे अध्यात्म मार्ग पर ले जाता है। परंतु आमतौर पर लोगों की यह धारणा रहती है कि यह अध्यात्म मार्ग तो केवल बड़े बुजुर्गों के लिए है, नौजवानों के लिए उसकी क्या जरूरत है? परंतु यह उनकी भूल है क्योंकि बुढ़ापे में तो मनुष्य की सब इन्द्रियां कमजोर हो जाती है। दूसरा अनुभवी गुरु इस घर को स्वर्ग बनाने का तरीका बता कर जीव की प्रकृति के अनुसार सहज साधन की विधि बताकर, सत्संग देकर मनुष्य को जिस बात की आवश्यकता हो, सही मार्गदर्शन कर सकता है।

परंतु अब प्रश्न यह है कि गुरु किसे बनाया जाए? उसकी पहचान क्या है? इसके लिए मैंने अपने अनुभव के आधार पर 15 पुस्तके लिखी हैं जिनको पढ़ने से आपको घर बैठे ज्ञानी पुरुषों के सत्संग का लाभ हो जाएगा। मैंने अपनी इन पुस्तकों में इस लोक का जीवन, उत्साह, उमंग व खुशी से जीते हुए सदा रहने वाले आनंद व परम शांति को प्राप्त करने के विधि-विधान संक्षेप में लिखे है। इससे घर बैठे ही आपके धर्म-संबंधी सभी भ्रम व संदेह दूर हो जाएगें। यह ज्ञान किसी एक पंथ या सम्प्रदाय के लिए नहीं है अपितु मानव मात्र के लिए है। मानव धर्म या मजहबे इंसायित का है ताकि मानव जाति अलग-अलग सम्प्रदायों में न बंटकर, एक ही धर्म का नाम रखकर, प्रेम से भाई-2 की तरह रहकर संसार का जीवन खुशी से जीए।

और यदि किसी की यह दुनिया बनी हुई है और उसके पास धन, मकान, दुकान, बंगला गाड़ी इत्यादि सब आधुनिक सुविधाएं है

और वह उनसे उपराम होकर केवल परम शांति को प्राप्त करने का इच्छुक है या फिर कोई सांसारिक दुखों से परेशान होकर केवल परमात्मा को पाने का इच्छुक है तो उसे किसी जीवित, ज्ञानी मुक्त पुरूष की शरण लेनी पड़ेगी। इच्छा प्राप्ति के लिए तो आप किसी मूर्ति को भी इष्ट बना सकते हैं जिसमें आपका विश्वास हो लेकिन सदा रहने वाली शांति तो आपको किसी जीवित अनुभवी महापुरूष के संग से ही मिलेगी। ऐसा महापुरूष बड़े शुभ कर्मों से मिलता है। उस महापुरुष को ढूंढने का तरीका यह है कि उसके लिए जबरदस्त चाह व इच्छा रखी जाए क्योंकि यह लोक विचारों का है। मनुष्य जैसी इच्छा व संकल्प रखता है वैसा ही उसे मिल जाता है। जैसे **'जहां चाह, वहां राह'**। ऐसा महापुरुष जीव को बाहर न भटका कर उसे उसके अंतर में दाखिल होने की विधि बता देता है। उसकी रहनी अलग होती है। जैसा इस शब्द में लिखा है –

भाई सोई सतगुरु संत कहावे, जो नैनन अलख लखावे।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढावे।
प्राण पूज्य क्रिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावे॥
द्वार न रुंधे पवन न रोके, नाहि अनहद उरझावे।
यह मन जाय जहां लग, जब ही परमात्मा दरसावे॥
कर्म करे नि:कर्म रहे जो, ऐसी जुगत लखावे।
सदा विलास त्रास नहीं मन में, भोग में जोग जगावे॥
धरती त्याग आकाश हूँ त्यागे, अधर मढैया छावे।
सुन्न शिखर की सार सिला पर, आसन अचल जमावे॥
भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न आवे।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागमन मिटावे॥

इस शब्द का भाव यह है कि सतगुरु संत वह होता है जो जीव को सहज विधि बताकर ध्यान योग से अंतर के ज्ञान चक्षु से अलख का अनुभव करा दे। उस सतगुरु का यह ज्ञान चलते-फिरते, खाते-पीते यानी हर स्थिति में अनुभव में बना रहता है। जैसे मनुष्य में श्वास हर समय अपने आप सहज में चलता रहता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष सहज ही इस नाम का अनुभव करता रहता है। इसके लिए उसे कोई यत्न करने की आवश्यकता नहीं रहती। वह हर समय अपने निज रूप से या परमात्मा तत्व कहो उससे जुड़ा रहता है। मैं सत्संगो में प्यारे सत्संगी सज्जनों को समझाने के लिए कहता रहता हूं कि मैं उस नाम का अनुभव हर समय करता रहता हूं और जिधर दृष्टि जाती है सब में उसी ही परमात्मा तत्व को देखता रहता हूँ। जैसा ऊपर के शब्द में लिखा है –

कर्म करे नि:कर्म रहे जो ऐसी जुगत लखावे।
सदा विलास त्रास नहि मन में, भोग में जोग जगावे॥

अर्थात् संसार के सब काम करता हूं परंतु उनमें लिप्त नहीं होता। हर समय उमंग, उत्साह, खुशी में रहता हूं। जो भी भोग भोगता हूं जैसे खाना, पीना, चलना, पहनना या देखना सब में परमात्मा तत्व व नाम का अनुभव बना रहता है। उदाहरण के तौर पर यदि किसी चोर को देखता हूं तो साक्षी भाव से यह समझता हूं कि परमात्मा चोर की लीला कर रहा है। पुलिस चोर को पकड़ कर ले जाती है तो साक्षी भाव से यह देखता हूं कि परमात्मा चोर को पकड़ने के लिए पुलिस बनी हुई है। यानी यहां जो कुछ हो रहा है, सब में परमात्मा का खेल देखता हूं। जैसे कहा है-

सीया राममय सब जग जानी।
या
जिधर देखता हूं, उधर तू ही तू हैं।

हर शय में जलवा तेरा हू ब हू है॥

अब मेरी खुद की कोई इच्छा नहीं है। जैसे-

चाह गई चिन्ता मिटी, मनवा बे परवाह।
जिनको कछु न चाहिए वो ही शाहनशाह॥

अत: आध्यात्मिक होने का भाव यह है कि हर समय खुश रहने, हसमुख रहने की जीवन शैली सीखी जाए। इसके लिए केवल विचार, चाह, इच्छा, लगन की सहज विधि है कि यह चाह रखे कि मुझे कोई हर समय खुश-हंसमुख, बेफिक्र रहने का ढंग, तरीका या विधि बताने वाला सज्जन मिले। यह लोक विचार और संकल्प का है। जैसा आप सोचोगे वैसा ही होगा। इसलिए ऐसे सतगुरू के संग की चाह रखनी चाहिए। रामायण में यह बात स्पष्ट लिखी हुई है कि

बिन सत्संग विवेक न होई।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई॥

अर्थात् किसी महापुरूष के सत्संग के बिना मनुष्य को ज्ञान नहीं होता और ज्ञान के अभाव में वह दुखी होता रहता है। इस संसार में ऐसे महापुरूष का मिलना ही दुर्लभ है। गुरु वाणी में भी यही बात कही गई है-

सतगुरु खोजो री जग में, दुर्लभ रत्न यही।

ऐसे सतगुरु की पहचान क्या है? वह इस शब्द में देखिए-

जिसके मन नहि चिन्ता व्यापे, जग में वही है दास फकीर।
अभय रहे चित गुरु पद राखे, धीर वीर गंभीर।।
शांत भाव व्यवहार परमारथ, कभी न हो दिलगीर॥
अपनी पीर न उर में साले, लखे पराई पीर।
पर की पीर न जिसे सताए, जो अधरम बे पीर॥

अपना रूप सम्भाले पल-पल, काट मोह जंजीर।
यह फकीर है गुरु का प्यारा, महावीर चित धीर॥
चाह गई चिन्ता सब भागी, आया भव निधि तीर।
हंस रूप धरि त्याग नीर को, गहि लिया ज्ञान का क्षीर॥
सतगुरू का सच्चा बालक, पहर वैराग का चीर।
तन के रहते मुक्त विदेही, सहे न द्वन्द्व शरीर॥

कहने का भाव यह है कि ऐसा सतगुरु निर्भय होता है। उसके पास सांसारिक किसी वस्तु की कमी नहीं होती। वह साधारण मनुष्य की तरह जीवन जीता है, अपनी रोजी-रोटी खुद कमा कर खाता है और बनावटी कोई वेश-भूषा नहीं पहनता। वह समझ, बुद्धि व विवेक का भण्डार तथा आत्म तत्व व सुरत तत्व का सहज अनुभवी होता है। वह हर समय समस्थिति में रहता है तथा कभी किसी पर क्रोध नहीं करता। वह जीव कल्याण के लिए यहां आता है और उसके दर्शन करने मात्र से जीव को आनन्द व प्रसन्नता मिलती है। जो स्वयं सेवकों के पहरे में रहते हैं और जिनसे आप मिल नहीं सकते, बातचीत नहीं कर सकते वह सतगुरु नहीं है अपितु अपने स्वार्थवश वेश भूषा बनाकर शिष्यों को गुमराह करते हैं। सतगुरू की महिमा यह है कि वह अपने शिष्यों का लोक व परलोक दोनों सुधार देता है। यदि कोई शिष्य अपने सांसारिक लाभ के लिए जाता है तो वह उसे उसकी विधि बता देता है और यदि कोई आत्म अनुभव के लिए जाता है तो उसे ध्यान-योग की विधि बताकर उसे अपने जैसा ही बना लेता है। जैसे-

पारस में और संत में यही अन्तरों जान।
वह लोहा कंचन करे गुरु कर ले आप समान॥

सच्चा सतगुरु जीव को बाहर न भटका कर, ज्ञान देकर

उसके सभी संशय दूर करके उसे यह विश्वास दिला देता है कि वह मालिक कहीं बाहर नहीं अपितु उसी के घट के अंतर में मौजूद है। अधिकारी शिष्य को वह यह शिक्षा देता है कि यह मानव देह बड़ी दुर्लभ है अत: जो कुछ भी करना है वह इस देह के रहते किया जाए। जैसे शब्द में लिखा है–

मिली नर देह यह तुमको, बनाओ काज कुछ अपना।
पचो मत आय इस जग में, जानियो रैन का सुपना।
देह ग्रह सब झूठा, भ्रम में काहे को खपना॥

जीव सब लोभ में भूले, काल से कोई नहीं बचना।
तृष्णा अग्नि जग जारा, पड़ा सब जीव को तपना॥

नहीं कोई राह बचने की, जले सब नरक की अग्नि।
जलेंगे आग में निस दिन, बहुरि भोगे जन्म मरना॥

भटकते वे फिरे खानी, नहीं कुछ ठीक उन लगना।
कहूं क्या दुख वह भोगे, कहन में आ नहीं सकना॥

दया कर सन्त और सतगुरू, बतावें नाम का जपना।
न माने जुक्ति यह उनकी, सुरत और शब्द का गहना॥

बिना सतगुरू बिना करनी, छुटे नहीं खान का फिरना।
कहां लग में कहूं उनको, कोई नहीं मानता कहना॥

हुए मनमुख फिरे दुख में, वचन गुरू का नहीं माना।
पुजावें आपको जग में, गुरू की सेवा नहीं करना॥

फिकर नहीं जीव का अपने, पडेगा नरक में फुकना।
समझ कर धार लो मन में, कहें सतगुरु निज वचना॥

अत: सतगुरु की आवश्यकता इसलिए है कि वह जीव को

हर स्थिति व परिस्थिति में खुश रहना सिखा देता है और यही धर्म कर्म का सार है। कबीर साहब ने यह बात केवल साधुओं के लिए कही है। जैसे–

'सदा दीवाली साध के और आठों पहर आनन्द।'

लेकिन मैंने यह अनुभव किया है कि सदा दीवाली गृहस्थी के और मनुष्य मात्र को आठों पहर आनंद क्योंकि मैं यह अनुभव 1962 से रोज रोज हर परिस्थिति में करता आ रहा हूं। अब 87 साल की आयु है। कल का कोई दावा नहीं कि क्या गुजरे? यह सब परमात्मा के हाथ में है।

गुरू रूप

लोग गुरु रूप के विषय में बड़े भ्रम व अज्ञान में है। अगर एक गुरु चोला छोड़ देता है तो वो कहते है कि गुरु चला गया है या उसकी धार उसके चेले में आ गई है। यह सब उनकी अज्ञानता है। वास्तव में गुरु नाम ज्ञान का है, समझ का है, विवेक है, अनुभव का है। जिस गुरु रूप को मानकर आप ध्यान करते है, वह आपका इष्ट है, आदर्श है। मन को ठहराने के लिए वह साकार रूप बनाया गया है, वह असली गुरू नहीं है। जैसे-

गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अन्ध।
दुखी होये संसार में, आगे यम का फन्द॥

गुरु किया है देह को, सतगुरू चीन्हा नाहि।
भवसागर की धार में, फिर-2 गोता खाहि॥

तो वह गुरु कौन है? वह आपके अपने अंतर में है, घट-2 में है। लेकिन अपने अंतर में जाने के लिए बाहरी गुरु का सहारा लेना आवश्यक है। जिस बाहरी गुरू को आप अपना इष्ट मानते हैं उसे परम तत्व का स्वरूप मानो और उसकी आज्ञा में चलो। क्योंकि 'गुरू जो कहे सो हितकर जान'। इस प्रकार बाहरी अनुभवी जीवित पुरूष को पूर्ण मानकर उनके आदेशानुसार चलोगे तो धीरे-धीरे आप अपने निज रूप को पहचान जाओगे। लेकिन पहले गुरू रूप को समझो। गुरू के चार रूप कहे गए है- श्रीगुरु, सतगुरु, आदिगुरु, जुगादि गुरु। श्रीगुरु - देहधारी बाहरी गुरु जो जीव को इस संसार का ज्ञान देकर सही समय व विवेक बुद्धि देते हैं। जैसे माता-पिता, विद्या गुरु इत्यादि।

सतगुरु - जो मनुष्य को सत्संग देकर आत्मा-परमात्मा विषय का ज्ञान देते है। यह परमात्मा का ही स्वरूप होते है जो मानव

को सत्संग देकर, योगसाधन की विधि सिखाकर उसे उसके रूप का अनुभव करा देते है। यह सतगुरू ही वास्तव में इस लोक में पूजनीय होते है।

आदिगुरू - सही समझ, विवेक बुद्धि या सद्बुद्धि, अंतर व बाहर में अनुभव तथा ज्ञान। यह ऊपर जो सतगुरु बताया है उससे चारों तत्व का अनुभव ज्ञान हो जाता है और स्पष्ट यह है कि मनुष्य की सुरत आदि है। परमात्मा तो यहां आयेगा नहीं। वह तो एक स्थानीय है। उसका अंश यह सुरत ही सब खेल कर रही है।

जुगादि गुरु - यह मनुष्य के अंदर राम नाम, सतनाम, अनहद नाद, उदगीत, प्रणव, सार शब्द व जीवन धारा है जो अनुभव किया जा सकता है। शब्दों से उसका ब्यान नहीं हो सकता। संतों ने इसके बहुत से नाम रखे हुए है। यह युग युगांतरो से मनुष्य की सुरत को खींच कर निज घर ले जाता है। वैसे इसका कोई नाम नहीं है और न कोई शक्ल सूरत है। मैं इस तत्व को यानी जुगादि गुरु को 1956 से अनुभव करता आ रहा हूँ।

प्यारे सज्जनों, बात बहुत ही आसान व छोटी सी है परंतु हमारे संतो ने बहुत ही रहस्य में शब्द रच-रच कर वाणी का जाल बना दिया है। शायद उस समय में यह वर्णन शैली ठीक रही होगी। परंतु आज का मानव यह पहेलियां समझ नहीं सकता है। उनको घर बैठे बात समझाने के लिए मैंने यह 15 छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी है जिनको पढ़ने से यह समझ में आ जाएगा कि सब कुछ आपके घर में है। जो आपको सब कुछ आपके अंदर होने का पूरा निश्चय या पूरा विश्वास करा दे। उस पुरूष का नाम ही सतगुरू है। जैसे -

'घट में घट दिखलाय दे, वह सतगुरु पुरुष सुजान।'

अर्थात् गुरु वह है जो शिष्य को अपने आप में ठहरा दें। वह एक आडियल है, इष्ट है। उसे अपने अंग संग समझो व पूर्ण ईश्वर का स्वरूप जानो। यह बाहरी माना हुआ गुरू का रूप जो तुम्हें अंतर

में प्रकट होकर दर्शन देता है, तुम्हारी दुनिया की आवश्यकताओं को पूरा कर देता है, जो अंतर में प्रकट होकर तुम्हारा मार्गदर्शन करता है और जिसकी तुम पूजा करते हो, वह तुम्हारे ही मन के आस-विश्वास से बनाया गया है। तुम स्वयं अपने ही मन से उस मूर्ति को प्रकट करते हो और उसकी पूजा करते हो। बाहरी इष्ट को इसका कोई ज्ञान नहीं होता है। बाहरी गुरु का तो केवल इतना ही काम होता है कि वह तुम्हें सच्चाई बताकर, ज्ञान देकर अंतरमुखी कर देता है जिससे तुम अपने रूप को पहचान सको। और यही गुरू की महिमा है। जैसा इस शब्द में लिखा है-

गुरू महिमा अगम अपार, गुरु गति कौन कहे री।
बिन गुरु कर्म न धर्म कुछ, बिन गुरु भक्ति न ज्ञान।
जन्म जन्म जम फांस है, बिन गुरु नहीं निर्वाण॥
चरण गुरु सिर धार, शुद्ध मति सोई लहे री।
देवी देवा ऋषि मुनि, सुर नर साध सुजान॥
हंस बंस अवतार सब, गुरु महिमा को जान।
गुरु है सत करतार, गुरु बिन कौन कहे री॥
राम कृष्ण के गुरु हैं, गुरु मत गुरु वशिष्ठ।
सन्त कबीर ने गुरु किया, गुरु हैं सबके इष्ट॥
बिन गुरु भव जल धार, निगुरे सकल बहे री।
दुख कलेश आपत्ति विपत्ति, चाहुं दिश जग में व्याप॥
जीव छुड़ावन सतगुरु प्रकटे, जग में आप ही आप।
सबका किया उद्धार, जो कोई शरण गहे री॥
सतनामी आदि गुरु, परम दयाल परवीन।
अभय करें पद भक्ति दें, तारे जीव आधीन॥

अत: मेरे अनुभव व समझ के अनुसार गुरु नाम ज्ञान का है जिसकी महिमा हम नहीं गा सकते हैं। किसी मनुष्य रूपी सतगुरु की तो हम महिमा गा सकते हैं। जैसे इस मनुष्य शरीर में कई तरह की दुनिया बसी हुई है। इसके शरीर में हृदय है, फेफड़े हैं, पित्ताशय, गुर्दे हैं, कई प्रकार की नस-नाड़ियां हैं और इनमें तरह-तरह के जीवाणु हैं तथा इनके काम भी अलग-अलग हैं। यानी इस मानव शरीर में पूरी दुनियां बसी हुई है। मैडिशियन व सर्जरी वाले डाक्टरों को भी इस शरीर रचना का अन्त नहीं मिलता है क्योंकि शरीर में विद्यमान Cells का अन्त ही नहीं है। जितनी खोज करते हैं, जितना पढ़ते हैं उतना ही नया-नया अनुभव करते रहते हैं। मन का क्षेत्र शरीर से भी ज्यादा हैं क्योंकि मन से उठने वाले संकल्प-विकल्प व मन की सृष्टि का कोई अन्त ही नहीं है। आत्मा का क्षेत्र मन से बड़ा है और सुरत का क्षेत्रतो बेअन्त है। कहने का भाव यह है कि मनुष्य परमात्मा के क्षेत्र का पार पा ही नहीं सकता है। इसीलिए इस शब्द में गुरु महिमा पर कहा है-

गुरु महिमा अगम अपार।
गुरु गति कौन कहे री॥

अर्थात् मनुष्य जो अज्ञान से दुखी है, इसके लिए उसे गुरु की जरूरत है और गुरु नाम ज्ञान का है। जब तक गुरु नहीं मिलेगा, यह भटकता रहेगा। जैसे इस शब्द में आया है-

देवी देवा ऋषि मुनि, सुर नर साध सुजान।
हंस बंस अवतार सब, गुरु महिमा को जान॥

इस दुनिया में जो कोई भी जीवन बनता है वह बिना समझ, विवेक, बुद्धि या अनुभव के नहीं रह सकता है। सोचने समझने की बात है। विवेक स्वभाव, परखने की शक्ति या बुद्धि तत्व हर एक जीव में और हर एक रचना में रहता है। देवी-देवता भी कुछ सोचते हैं। छोटे-छोटे कीड़ों, जानवरों, मछलियों सब में ही बुद्धि का तत्व

मौजूद है। धार्मिक जगत के प्यारे सज्जनों। जब कोई सज्जन किसी बात की इच्छा करता है तो इच्छा को पैदा करने वाली बुद्धि उसके अन्दर ही है–

"गुरु महिमा अगम अपार, गुरु गति कौन कही री।"

क्या कोई कह सकता है कि यह बुद्धि तत्व है, विवेक तत्व है, ज्ञान तत्व है अथवा अनुभव तत्व है चाहे उसके रूप पृथक–पृथक हैं, कितना अगम, अपार है? क्या किसी में शक्ति है कि यह जो हमारे अन्दर विवेक है, बताये कि वह क्या है? शरीर में रहते हुए विवेक या परखने की शक्ति और आत्मा में रहते हुए उस प्रकाश को देखते हुए जो बोध होता है, चेतना आती है वह शक्ति तथा आत्मा से आगे परमात्मा में रहते हुए शब्द को सुनते समय जो अनुभव पैदा होता है वह शक्ति क्या है? तो फिर गुरु महिमा को कौन गायेगा? बाहर के गुरु जैसे नानक, कबीर और अन्य किसी शरीरधारी के गुणों का तो तुम वर्णन कर सकते हो परन्तु जो असली ज्ञान रूपी गुरु है, उसका नहीं। जब तक शारीरिक, मानसिक, आत्मिक ज्ञान तथा आत्मा से परे परमात्मा का जो बोध है, इन सब प्रकार की चेतनाओं के ज्ञान की किसी को जानकारी नहीं है तब तक वह भवसागर से पार नहीं जा सकता है। तो फिर गुरु क्या हुआ? नीचे शब्द में पढे–

शब्द

गुरु मध्य आदि अनन्त, अद्भुत अमल, अगम अगोचरम्।
विभु विरज पार अपार निर्गुन, सगुन सत्य विशेश्वरम्॥
जेहि मत लखे नहीं गति लखे, सो शुद्ध तत्व विचार है।
जो चरन कमल की ओट आया, भव से बेड़ा पार है॥
गुरु विष्णु मूरत शिव की सूरत, गुरु को ब्रह्म जान तू।
गुरु ब्रह्म हैं परब्रह्म है, यह सोच समझ के मान तू॥

कर गुरु की संगत रात दिन, नर जन्म अपना सुधार ले।
दे फेंक माया बोझ सिर से, यम का सीस न भार ले॥
सीस दे तन मन को दे, गुरु भक्ति रतन अमोल ले।
सतगुरु भेद बतायें तुझको, हिये तराजू तोल ले॥

तो यह आदि गुरु क्या है? यह है चेतनता जिसे सन्तों ने सुरत कहा है। यह भी उस परमतत्व से उत्पन्न होता है जिसके महापुरुषों ने मालिक, परब्रह्म, सतनाम आदि अनेक नाम रखे हुए है। वह एक तत्व है जिसमें चेतनता नहीं है। उसमें हिलोर उठती है तो शब्द प्रकट होता है और फिर चेतनता आती है। इस संसार के खेल में चाहे वह शरीर सम्बन्धी है, मन सम्बन्धी है या आत्मा सम्बन्धी है, मनुष्य का रक्षक वह परम तत्व नहीं है, क्योंकि वह मालिक तो आधार मात्र, तटस्थ व एकरस है। फिर उसका रक्षक कौन है? उसका रक्षक वह आदि है, चेतनता है, अनुभव है, ज्ञान है, विवेक है, बुद्धि है। इसलिए पूजा के योग्य गुरु का स्वरूप है क्योंकि वहीं यह बुद्धि, विवेक तथा ज्ञान दे सकता है लेकिन देगा वही जिसे अपने रूप का ज्ञान है और जो इस विषय का अनुभवी है। ऐसे गुरु को पूर्ण मानकर, उनकी वाणी को समझ कर जो उनकी आज्ञानुसार आचरण करते हैं उनको ही सांसारिक, मानसिक व आत्मिक सुख–शान्ति मिल सकती है। जैसे कहा है–

ध्यान मूलं गुरु मूर्ति, पूजा मूलं गुरु पदम्।
मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं, मोक्ष मूलं गुरु कृपा॥

'ध्यान मूलं गुरु मूर्ति' का अर्थ है गुरु को पूर्ण परमात्मा का स्वरूप मानकर उसका ध्यान किया जाए जिससे सहज में परमात्मा तत्व के गुण मिलते रहेंगे क्योंकि उससे जो विचार भाव, Radiation निकलती रहती है, शिष्य में वह सहज ही सब गुण आ जाते हैं।

'पूजा मूलं गुरु पदम्' पूजा कहते हैं चाह या इच्छा को। पद

कहते हैं चरण को। लेकिन ये चरण वो बाहरी चरण नहीं जिसकी लोग पूजा करते हैं, असली गुरु के चरण अन्तर में प्रकाश है। अत: शिष्य इन गुरु चरणों की चाह रखे और यह विचार रखे कि उसे गुरु महाराज जी की तरह जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त हो।

'मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं' अर्थात् गुरु जो सलाह दे या विधि बताए उसी के अनुसार आचरण किया जाए। जैसे गुरु वाणी में लिखा है-

"गुरु जो कहें वह हितकर जान।
गुरु जो कहें सो चित कर ध्यान।"

'मोक्ष मूलं गुरु कृपा' यह गुरु कृपा क्या है? गुरु की मौज में रहना। जैसे-

गुरु की मौज रहो तुम यार।
गुरु की रजा सम्भालो यार॥

यानी सुरत शब्द योग का साधन करते हुए सहज में जब अपने निज रूप या सुरत तत्व का अनुभव ज्ञान हो जाता है उसके बाद गुरु की रजा में जीवन जीते हुए साक्षी भाव से उसकी लीला देखें। जो कुछ हो रहा है सब गुरु मौज समझें। जैसे नानक जी ने कहा है-

तेरा भाना मीठा लागे।
नाम पदार्थ नानक मांगे॥

अत: गुरु पूजा केवल मत्था टेकना, फूल माला चढाना या भेंट देना ही नहीं है अपितु गुरु की पूजा उसकी बात को सुनना, गुनना और अमल करना है। इसलिए सन्तमत में पूरे गुरु की महिमा है। जैसे-

"गुरु तो पूरा ढूंढ रे, तेरे भले की कहूं।"

शब्द

सतगुरु चीन्हों रे भाई।
सतनाम बिन सब नर बूढे, नरक पड़ी चतुराई।।
वेद पुरान भागवत गीता, इनको सबै दृढावै।

जाको जन्म सुफल रे प्राणी, सो पूरा गुरु पावै॥
बहुत गुरु संसार कहावैं, मन्त्र देत हैं काना।
उपजें विनसें या भौसागर, मरम न काहू जाना॥
सतगुरु एक जगत में गुरु हैं, सो भव से कढिहारा।
कहें कबीर जगत के गुरु वा, मरि मरि ले अवतारा॥

अत: पूरा सतगुरु वह है जो आपके भ्रम व सन्देह को दूर कर आपकी बुद्धि को निश्चयात्मक बना देता है और अन्तर के रहस्य को समझा कर आपको सदा के लिए निर्भय कर देता है। परन्तु लोग यह समझते हैं कि गुरु फूंक मारकर या मन्त्र पढ़कर आपके दुखों को दूर कर देता है दुनियां की जरूरतों को पूरा कर देता है या आपकी सुरत को ऊपर चढा देता है। और इसी अज्ञानता में गुरुओं के पास यह भीड़ इक्ट्ठी हो जाती है। जबकि सच्चाई यह है कि यह सब आपके ही विश्वास का फल है। गुरु कोई बात मुंह से कह देता है और वह पूरी हो जाती है तो यह मत समझो कि वह बात गुरु के कारण हुई है अपितु आपको जो कुछ मिलता है वह आपके अपने कर्मों के अनुसार व आपके ख्याल, भाव या विश्वास के अनुसार मिलता है। गुरु तो केवल सच्चा मार्ग प्रदर्शन करता है। बड़े शुभ कर्म हों तब ऐसा सच्चा अनुभवी महापुरुष मिलता है। मैं अहंकार की बात नहीं कहता। मेरे सत्संग में केवल वही लोग आते हैं जिनका पिछला शुभ कर्म जगा हुआ होता है, दूसरे आ ही नहीं सकते क्योंकि चुम्बक लोहे को ही खिंचता है। लोहे में चुम्बक की ओर खिंचने का विशेष गुण है। चुम्बक पत्थर को नहीं खींच सकता है। इसलिए आप जितने सज्जन मेरे सत्संग में आते हो, अपने पिछले कर्मों के अनुसार आते हो। मैं आपको पवित्र संस्कार दिए जाता हूँ यानि बीज डाल जाता हूं। जैसे पुलिस के महकमे में हत्यारे या चोर को पकड़ने के लिए कुत्ते होते हैं। उनको उनका कपड़ा सुंघा देते हैं। कुत्ता गंध लेता हुआ चलता है।

जहां से वह गंध निकलती है, वहां उसको पकड़ लेता है। इसी प्रकार यदि कोई सच में सन्त है तो उसकी रेडियेशन से वह स्थान पवित्र हो जाता है। जैसे-

"भूमि पवित्र हो जहां सन्त पग धरते।"

सच्चा, हितैषी व निष्काम गुरु ही जीव को कल्याणकारी सत्संग दे सकता है। जिस तरह तपेदिक का रोगी अपने जीवाणु छोड़ जाता है उसी तरह निर्बन्ध, पूर्ण पुरुष भी अपने संस्कार छोड़ जाता है। उसकी रेडियेशन आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों सब पर प्रभाव डालेगी। लेकिन जब तक मनुष्य को गुरु के सब रूपों का अनुभव नहीं होता वह निर्वाण गति तक नहीं पहुंच सकता। मैं अपने प्रातः स्मरणीय परम सन्त पण्डित फकीरचन्द जी महाराज जी की कृपा से इस सन्त मत व सतगुरु के रूप को समझ गया और उनके पास सन् 1956 में पहली ही बार जाने से इस नाम को अनुभव कर लिया जिसके लिए ऋषि मुनि न जाने कितना-कितना तप करते हैं। इसलिए सतगुरु को शत्-शत् प्रणाम है।

नमो सतगुरु सच्चिदानन्द रूपम्।
नमो अद्भुतम् अद्वितीयम् अनूपम्॥
नहीं रूप कोई है सब रूप तेरे।
तेरी सब ही प्रजा और भूप तेरे॥
धरा सन्त अवतार जग को चेताया।
दुखी दीन को अंग अपने लगाया॥
दिया संग सत का मिला सत का जीवन।
तेरे नाम पर सीस तन मन है अर्पन॥
झुके सतगुरु चरण हंसते हंसते।
तुझे कहते हैं सब नमस्ते नमस्ते॥

धार्मिक भेदभाव की समझ

यह जितने भी धर्म पन्थ व सम्प्रदाय हैं चाहे वह जैन धर्म है, बौद्ध धर्म है, सिक्ख धर्म है, सनातन धर्म है या कोई ओर धर्म है वे सब मानव धर्म के अन्तर्गत आ जाते हैं क्योंकि कुल मानव जाति एक जैसी है। सभी का परमात्मा एक है और हर मनुष्य में उस मालिक का एक छोटा अंश काम कर रहा है जिसको आत्मा, रुह या सुरत कहते हैं। सभी मनुष्यों में वह आत्मा (सुरत) एक समान है और सभी की जरूरतें एक जैसी हैं। जैसे- भोजन, मकान, वस्त्र इत्यादि। यह जितने भी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैनी आदि बने हैं, वह परमात्मा के यहां से बन कर नहीं आए हैं अपितु हमने खुद बनाए हैं। मानव जीवन का असली ध्येय समस्त दुखों से छुटकारा पाकर सुख शान्ति का जीवन बिताना है और इसी के लिए ये मजहब व धर्म-सम्प्रदाय बनाए गए हैं। जैसे ये स्कूल या कालिज शिक्षा प्राप्ति के लिए हैं उसी प्रकार ये सब मजहब, पंथ, सम्प्रदाय मानव कल्याण के लिए हैं। परन्तु अब एक मत का शिष्य दूसरे मत के शिष्यों से नफरत, द्वेष व घृणा रखता है व लड़ाई-झगड़ा करता है तथा अपने को बड़ा व दूसरे को छोटा मानता है जो गलत है।

कुछ लोग मुझ से प्रश्न करते हैं कि जब मनुष्य एक है, भगवान एक है तो ये अलग-अलग पन्थ क्यों बने? और ये आपस में क्यों झगड़ते है? यही बात मुख्य रूप से समझने वाली है। जैसे शिक्षा-प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न स्कूल व विद्यालय है। उनकी इमारतें अलग-अलग है। कोई बड़ी है तो कोई छोटी। कोई सुन्दर है तो कोई साधारण है लेकिन इससे किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता है। मुख्य उद्देश्य तो यही है कि उन स्कूल, कालिजों के शिष्यों के परिणाम कैसे है? तथा उनकी योग्यता कैसी है? क्योंकि स्कूल, विद्यालय वही अच्छे माने जाते हैं जहां से विद्यार्थी पास होकर योग्य बन कर निकलते हैं। और जैसे अस्पताल कितना ही बड़ा या सुन्दर

क्यों न हो लेकिन रोगी के लिए वही अस्पताल अच्छा है जहां से उसे आराम मिलता है। इसी प्रकार शिष्य चाहे किसी भी पन्थ या सम्प्रदाय का है यदि उसमें इन्सानियत नहीं आती है तो वह पन्थ या सम्प्रदाय दोषपूर्ण है क्योंकि इन्सानियत रूहानियत की बुनियाद है। इसलिए मेरे गुरु महाराज जी ने धर्म का नाम मानव धर्म यानी Religion of huminity रखा है जिसका मुख्य उद्देश्य यह है कि भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदायवादी होते हुए भी लोग आपस में प्रेम-प्यार रखें व भाईचारा बनाए रखें क्योंकि मालिक की असली पूजा यही है कि इन्सान इन्सान के काम आए और उसका भला चाहे। जैसा कहा है- "जनता की सेवा ही जनार्दन की सेवा है।" खाला की सेवा ही खलकत की सेवा है। अत: असली मालिक मन्दिर गुरुद्वारा, चर्च या मस्जिद में नहीं है अपितु हर घट में समाया हुआ है। जैसा स्वामी जी ने कहा-

भान रूप मालिक सुन भाई।
हर हिरदे में रहा समाई॥

यह लोगों की अज्ञानता है कि वह मन्दिर, मस्जिद आदि स्थानों में भगवान् को ढूंढते हैं और तिलक लगाना, फूल चढ़ाना, आरती उतारना आदि को ही अपना धर्म मानते हैं जबकि इन्सान का मुख्य धर्म अपने कर्त्तव्य का पालन करना है। आप गृहस्थी है अत: गृहस्थी होने के नाते मां-बाप के प्रति, भाई-बहन के प्रति, पति का पत्नी के प्रति और पत्नी का पति के प्रति जो भी कर्तव्य व जिम्मेदारियां है उनका ठीक से पालन करना ही धर्म का पालन करना है। इसी प्रकार घर से बाहर चाहे आप किसी भी पद पर है, यदि आपका लोगों के साथ ठीक व्यवहार है और लोग आपकी सराहना करते हैं तो आप सही रूप से अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। लेकिन आजकल देखने में आ रहा है कि लोग घरों में अपने आश्रित बूढ़े मां-बाप की सेवा नहीं करते, उनके आदेश का पालन नहीं करते, अपने भाई-बन्धुओं

से द्वेष-भाव रखते हैं और गुरुओं के दरबार में जाकर सेवा करते हैं, पैसे देते हैं और अपने आपको धार्मिक समझते हैं, यह उनकी भूल है क्योंकि मन्दिर, गुरुद्वारे व आश्रम की सेवा बाद में आती है। पहला कर्त्तव्य आपका घर में सेवा करना है। कबीर साहब ने इसे ऐसा कहा है-

दया राख धर्म को पाले, जग से रहे उदासी।
अपना सा जीव सबका जाने, ताहि मिले अविनासी॥

सहे कुशब्द बाद को त्यागे, छोड़े गर्व गुमाना।
सत्तनाम ताही को मिलि है, कहे कबीर सुजाना॥

अब यह दया किस पर की जाए? घर में अपने बच्चों पर, पत्नी पर, अपने बड़े बुजुर्गो पर जो गलती करते हैं। उनकी गलतियों को नजरअंदाज करके उन्हें माफ कर देना ही सबसे बड़ी दया है। गृहस्थी को अपने घर में दया रखने व अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन करने का सबसे अधिक अवसर मिलता है। जो लोग अपनी घर की जिम्मेदारियों से डर कर अपने बूढ़े मां-बाप, पत्नी व बाल-बच्चों को छोड़कर घर से भाग कर भगोड़े हो जाते हैं और गेरूवें वस्त्र पहनकर साधु बन जाते है और मांग कर खाते हैं उन्हें कभी शांति नहीं मिलती है। अत: घर में रहकर ही किसी अनुभवी जीवित महापुरूष से ज्ञान लेकर अपने घरों को स्वर्ग बनाओ, अपने बाल-बच्चों से मीठा बोलो, माता-पिता का सम्मान करो, कठोर वचनों को सहन करना सीखो क्योंकि यही सबसे बड़ा तप है और कभी किसी के साथ ऐसा व्यवहार मत करो जो आप स्वयं अपने लिए नहीं चाहते हो क्योंकि यह प्रकृति का सिद्धांत है कि जो आप दोगे, वहीं मिलेगा।यदि आप सम्मान करोगे तो सम्मान मिलेगा और यदि किसी को गाली दोगे तो गाली ही मिलेगी चाहे किसी को देकर देख लेना।

यह सब ज्ञान आपको सत्संग से मिलता है और वह सत्संग

भी किसी गृहस्थी अनुभवी महापुरूष का होना चाहिए क्योकि सन्यासी आपके घर की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता है। निम्न शब्दों में कबीर ढोंगी पाखंडी साधुओं को चेतावनी देते हुए कह रहे हैं कि

संतों मूल भेद कुछ न्यारा, कोई विरला जानन हारा।
मूंड मुंडाये भयो क्यों बावरे, जटा जूट सिर धारा।
क्या भयो पशु सम नग्न फिरत, बन अग्नि लगा के छारा॥

क्या भयो कंद मूल फल खायो, वायु किया आहारा।
सीत ऊष्ण सही क्षुधा तृष्णा, तन जीर्ण कर डाला॥

सांप छोड़ बांबी को कूटे, अचरज खेल अपारा।
धोबी के पास चलत नहीं कुछ, गदहा क्या बिगाड़ा॥

यज्ञ, जप तप संयम, व्रत क्या कर्म विस्तारा।
तीर्थ मूर्त सेवा पूजा, यह उर के व्यवहारा॥

हरिहर ब्रह्मा यह खोजत हारे, घर-2 जग अवतारा।
वाणी पोथी में क्या ढूंढे, वेद नेति कह हारा॥

बिन सतगुरू भक्ति भेद नहीं पावे, भ्रम करे संसारा।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, मानो कहा हमारा॥

उनका कहने का भाव यही है कि जिन्हें सतगुरू से सच्चा भेद मिल जाता है वो बाहरी बनावटी वेशभूषा धारण नहीं करते और न ही वे अपने शिष्यों को बाहरी किसी कर्मकाण्ड में उलझाते है। प्यारे पाठकगण। सन्मत आया तो था पूरी मनुष्य जाति को भेद देकर, सच्चाई बताकर एक करने के लिए ताकि मनुष्य संसार में धर्म के नाम पर वैरभाव या अपने को दूसरों से अलग न समझे और भाई-2 की तरह रहकर इस संसार का जीवन खुशी-प्रेम से जीये परंतु अब

वह बजाय एक करने के अपने नाम, मान व बड़ाई के लिए अलग-2 पंथ व सम्प्रदाय बनाकर मानवता को अलग-अलग टुकड़ों में बांट रहा है। आज इसका परिणाम हम देख रहे हैं कि एक सम्प्रदाय का सत्संगी अपने गुरू को बड़ा और दूसरे को छोटा मान रहा है और दूसरे आश्रम के सत्संगी से नफरत करता है। एक आश्रम का गुरु अपने को पूर्ण व दूसरों को छोटा समझ रहा है। एक आश्रम का गुरू दूसरे पंथ व सम्प्रदायों के गुरुओं से मिलते तक नहीं। मैंने यह समझा है कि उनको खुद को डर व भय है। आजकल ये जो कर रहे हैं वह मीडिया दिखा रही है। सोचो यह पाखण्ड कब तक चलेगा। सबका तो हम नहीं कह सकते परंतु यह पाखण्डी गुरु जो संतों का वेश बनाकर भोले-भाले सत्संगियों को गलत शिक्षा दे रहे हैं, बगावत कराकर कर उनका धन लूट रहे है और देश की सम्पत्ति को बर्बाद कर रहे है, मेरे अनुभव के अनुसार ये बहुत जल्दी ही पकड़े जाएंगे और भोले-भाले लोगों को धोखा देकर, उनसे धन ले-लेकर जो इन्होंने अपनी जायदाद बना रखी है, वह सब पब्लिक के हाथ में होगी और जल्दी ही ये अपने कर्म का फल भोगेंगे। क्योंकि अपने खुद के अनुभव ज्ञान के बिना ये जो कथा, कीर्तन व अपनी बुद्धि से गुरुवाई करते है और लाखों लोगो को बिना सच्चाई बताए अपने पीछे लगा लेते है, दूसरों को तो निर्भय व मुक्त होने का ज्ञान देते है और खुद अपनी रक्षा के लिए पुलिस के पहरे में रहते हैं तो सोचो इनका क्या अंत होगा? यही कारण है कि पुलिस इनके आश्रम व डेरों की तलाशी ले रही है जिसे आप रोज दूरदर्शन पर देख रहे है। इसलिए कहा है -

झूठे गुरु को तजत में, नेक न कीजे वार।
पार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार।।

लेकिन जो महापुरुष मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर काम करते हैं उन्हें किसी तरह का कोई डर भय नहीं होता है और वे सच्चाई व निस्वार्थ भाव से जनता को धर्म, कर्म का मार्गदर्शन करते हैं तथा

उन्हें यह धर्म का रहस्य खोल कर बता देते हैं कि कोई भी महात्मा, गुरू-पीर, साधु-संत किसी को कुछ नहीं दे सकता और न ही उनमें यह ताकत है कि वे किसी को कुछ दे सकें। जो कुछ भी किसी को मिलता है वह उसे अपनी ही श्रद्धा, आस-विश्वास व कर्म के अनुसार मिलता है। अब गुरु कोई बात कह देता है और वह पूरी हो जाती है तो यह मत समझो कि वह बात गुरु के कारण हुई है या आपके अंदर राम, कृष्ण, देवी-देवता या कोई गुरु-पीर का रूप प्रकट होता है तो यह मत जानो कि वह प्रकट होने स्वयं आए है। यह सब आपके मन की शक्ति का खेल है आपका मन ही श्रद्धा, विश्वास से उस रूप को प्रकट कर लेता है। बाहर से कुछ नहीं आता है क्योंकि वह परमात्मा आपके अंदर ही विराजमान है। जैसे कहा है-

घट में दर्शन पाओगे, संदेह इसमें कुछ नहीं।
मैं तो घट में हूं तुम्हारे, ढूंढ लो मुझको वही॥

शब्द सुनते हो मेरा, अंतर मैं चित को साधकर।
सुरत मेरा रूप है, इसको समझ लेना यही॥

सूक्ष्म हूं स्थूल हूं , कारण हूं, कारण से परे।
देख दृष्टि को जमा कर, अपने अंतर में कहीं॥

चाह जब दर्शन की होगी, देख लोगे आप तुम।
जागते में सोते में, सन्ध्या में मैं हूं सब कहीं॥

सतलोक धाम में, सेवक हूं सतलोक का।
मेल मेला राम में, इसकी परख आई नहीं॥

आजकल के गुरु-पीर, साधु-महात्मा यह सच्चाई नहीं बताते क्योंकि ऐसी सच्चाई से उनके केंद्र टूटते हैं और शिष्यों की भीड़ कम हो जाती है। ऐसे गुरु पूरी उम्र शिष्यों को अपने आश्रमों में बांधे रखते है और वास्तविकता को छिपाते है। बस इसी अज्ञानता के कारण ये

भिन्न-2 धर्म, सम्प्रदाय बन गए हैं जो चारो ओर मनुष्यों में नफरत, ईर्ष्या, द्वेष फैला रहे है। इसलिए इन पाखण्डी धर्म सम्प्रदायों से बचो और किसी सच्चे सतगुरू से अपने कल्याण का रास्ता पूछो।

आज सच्चे संत महापुरूषों की बहुत आवश्यकता है। जो ऐसा सच्चा ज्ञान देते है, मैं उन संतों को दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। वह हमारे देश की धरोहर है, सम्मान है तथा मानवता के आदर्श व इष्ट हैं। जैसे कहा है-

आग लगी संसार में, झड़ झड़ पड़े अंगार।
जो न होते संत जन, जल मरता संसार॥

मुझे किसी भी मनुष्य, साधु -संत व धर्म सम्प्रदाय से कोई शिकायत नहीं है अपितु मनुष्य मात्र से प्रेम भाव है। मैने जो कुछ भी लिखा है अपने अनुभव के आधार पर मनुष्य जाति की भलाई के लिए लिखा है ताकि पढ़े लिखे, बुद्धिमान् व्यक्ति इस रहस्य को समझ सके। मैं तो यही चाहता हूं कि मनुष्य सब को सुख देने वाले देवताओं के गुण ले व आपस में प्रेम प्यार से रहे। अपने माता-पिता के आज्ञाकारी, परिवार व समाज को सुख देने वाला बनो। अपने खुद के स्वार्थ के लिए किसी का दिल न दुखाएं। हेरा-फेरी छोड़कर एक आदर्श नागरिक बनो। हमेशा आशावादी विचार रखो और ज्ञान से अपने जीवन को सुंदर बनाओ। मुझे 1956 में अपने सतगुरु से इस ज्ञान की प्राप्ति हो गई थी और तब से मैं योग की सहज अवस्था में रहता हुआ हर स्थिति व हालत में जीवन का आनंद लेता आ रहा हूं।

सहज योगी होते हुए 1962 से गुरु की आज्ञा से अपनी योग्यतानुसार यह ज्ञान देता आ रहा हूं। मैंने न कोई आश्रम बनाया है, न कोई शिष्य बनाया है। जहां सत्संग देता हूं, वही मेरा आश्रम है और जो मेरे सत्संग सुनकर या पुस्तकें पढ़कर मेरे प्रति विश्वास कर लेते हैं, वही मेरे शिष्य हैं। सभी सम्प्रदायों, पन्थों व धर्मों के सज्जन मेरे सत्संगों का लाभ उठाते हैं। अधिक सज्जन पुस्तकें पढ़कर, मुझ पर

विश्वास करके मेरे से मिलते है। इनमें वकील, डाक्टर, इंजीनियर, अध्यापक आदि बुद्धिमान् सज्जन अधिक है।

मेरे अनुभव के अनुसार मनुष्य पैर से चोटी तक आध्यात्मिक है। मनुष्य को दुख केवल अज्ञान का है। उसे सच्चाई बताकर यह ज्ञान दिया जाए जिससे उसके भ्रम, शंका दूर हों। वह निर्भय बने और हर समय खुश रहे। बस इतनी सी बात है। मैंने अपने योग-साधन के सहज अनुभव के आधार पर 15 छोटी-2 पुस्तकें लिखी है जिसमें मैंने मनुष्य जीवन के सभी भागों पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। कोई समझदार सज्जन बुद्धि ध्यान से ये पुस्तकें पढ़ेगा तो आजकल जो धर्म-कर्म संबंधी भ्रम, शंका पैदा हो रहे हैं, वे सब समाप्त हो जाएंगे और उन्हें अध्यात्म ज्ञान का सही मार्ग मिल जाएगा।

ध्यान योग से सुख-शांति की प्राप्ति

योग क्या है- 'योगश्च चित्तवृत्ति निरोधः' अर्थात् मन की वृत्तियों को एकत्रित करना ही योग है। योग कोई मंजिल नहीं है। योग से मन इकट्ठा हो जाता है और इच्छा शक्ति बढ़ जाती है। ध्यान आपकी सुरत है और मनुष्य जीवन का यह सब खेल इसी से होता है। इसको अपने अंदर की ओर लगाना ही ध्यान योग है। यह ध्यान योग किसी अनुभवी सतगुरू की देख-देख में ही करना चाहिए क्योंकि योग से इच्छा शक्ति के बढ़ जाने से यदि वह गलत सोचेगा तो नुकसान होगा। इसलिए ऐसी स्थिति में हमेशा सुंदर-2 व आशावादी विचार ही रखने चाहिए। दूसरा, यदि वह ध्यान के लिए दिमाग पर जोर लगाएगा तो दिमाग का संतुलन बिगड़ने का भय रहता है। ध्यान एक दूसरे की नकल करके नहीं करना चाहिए क्योंकि हर इंसान की प्रकृति अलग-2 होती है। अतः गुरु बेहतर जानता है कि उसके लिए कौन सी विधि उचित है।

गीता में कर्मयोग, बुद्धियोग, ज्ञान योग इत्यादि कई प्रकार के योग बताए गए हैं। संसार में जो मन लगा कर काम करते हैं उन्हें कर्मयोगी कहा जाता है। जैसे गीता में कहा है 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात कार्य की कुशलता ही योग है। मैं सत्संग में प्रायः यह बात कहता हूं कि अगर आप दुनिया में कोई भी काम इतनी तल्लीनता से करते हैं कि आपको कोई ओर ध्यान ही न रहे तो समझो आपका ध्यान बन गया। जैसे अगर कोई औरत रसोई में भोजन बनाती है तो उस समय उसका ध्यान केवल भोजन बनाने में रहे तथा और कोई विचार न आए और यह विचार रखे कि मैं आज ऐसा भोजन बनाऊंगी कि खाने वाले उसकी तारीफ करें और साथ में मालिक का सुमिरन हो तो वह भोजन अमृत बन जाता है। नफरत, ईष्या व क्रोध के साथ बनाया गया भोजन हानिकारक होता है। अगर आप भोजन करते हैं

तो उस समय आपका ध्यान भोजन में रहे और कोई विचार न रहे तो भोजन का आनंद बढ़ जाता है। इसी प्रकार आप अध्ययन करते हैं या कोई और काम करते हैं और अगर आपका ध्यान कहीं बाहर नहीं जाता तो सफलता आपके पांव चूमती है। कृषि के औद्योगिक क्षेत्र इत्यादि में मानव ने जो उन्नति प्राप्त की है वह सब इस ध्यान का ही कमाल है। ध्यान से काम करने की इस कला से आपके मन को एकाग्र करने की आदत बन जाएगी और फिर जब कभी आप गुरु से ध्यान करना सीखोगे तो बहुत जल्दी आपका ध्यान बन जाएगा।

बुद्धियोग बुद्धिमानों के लिए है क्योंकि बुद्धिमान् व्यक्ति की बुद्धि में जो बात बैठ जाती है तभी वह यकीन करता है। उसकी बुद्धि से जब सब भ्रम दूर हो जाते हैं तभी वह आगे चलता है। इन बुद्धिमानों के लिए ही मैंने अपने अनुभव के आधार पर ये पुस्तकें लिखी है जिन्हें पढ़ने से उनके भ्रम दूर हो सकते है। ऐसे बुद्धि से तर्क वितर्क करने वाले व्यक्तियों को ध्यान लगाने में थोड़ा समय लगता है।

ज्ञान योग वह है जिसमें मनुष्य अपने आप के बारे में जान जाता है कि वह कौन है? कहां से आया है? और उसे कहां जाना है? इस ज्ञान प्राप्ति के बाद उसका कोई प्रश्न शेष नहीं रहता यानी वह साक्षी भाव से जीवन के सब खेल खेलता हुआ जीवनमुक्त अवस्था में अपना जीवन जीता है। यानी यह गीता का समत्व बुद्धि योग कहा जा सकता है।

संतो ने मनुष्य की प्रकृति के अनुसार इस समय ध्यान योग को दो भागों में बताया है। एक तो पांच नाम का साधन और दूसरा अलख, अगम व अनाम का साधन। पहले योग साधन से मनुष्य अपनी लगन व इच्छा के अनुसार मन को एकाग्र करके सांसारिक सुख सुविधा व सिद्धि शक्ति प्राप्त कर सकता है। यदि शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य ठीक है तो आत्मानन्द का लाभ ले सकता है और किसी हद तक सुरत–शब्द के साधन से कुछ समय के लिए शांति का

लाभ भी ले सकता है।

योग साधन के लिए संत मत में इष्ट गुरू स्वरूप का बताया जाता है जो बहुत ही उत्तम है परंतु दुनिया की सिद्धि सफलता के लिए अपने अपने विश्वास के अनुसार राम, कृष्ण, माता जी, बाला जी आदि देवी देवताओं को इष्ट बनाकर, उनको सब कुछ मानकर ध्यान करो। जो भी सच्चे मन से चाहोगे जरूर सफलता मिलेगी लेकिन यदि कोई आपकी नजर में जीवित अनुभवी महापुरूष है जिससे आप मिल सकें, बातचीत कर सकें तो सोने में सुगंध वाली बात है नहीं तो किसी भी मूर्ति में जहां आपकी आस्था है उसे पूर्ण परमात्मा का स्वरूप मान कर ध्यान करो। जैसे नीचे इस शब्द में लिखा है–

शब्द

मंगलम् गुरुदेव मूर्ति, मंगलम पद् पंकजम।
मंगलम् अव्यक्त अनुपम, मंगलम् भव गंजनम्॥
मंगलम् धुरपद निवासी, मंगलम् सत् आसनम्।
मंगलम् निर्वाण सद्गति्, मंगलम् जन रंजनम्॥
मंगलम् ज्ञान स्वरूपम्, मंगलम् आनन्द रूप।
मंगलम् चैतन्य सदनम्, मंगलम् सत सत्य भूप॥
मंगलम् योगेन्द्र मायातीत, मंगलम् फल दायकम्।
मंगलम् त्रयगुण रहित, अपरोक्ष परोक्ष निवासनम्॥
आदि कारण मूल कारण, मध्य आदि अनन्त जो।
मंगलम् करूणा सदनम्, शुभ तत्व जगत प्रभो॥
आप प्रकटे इस जगत में, जीव काज सुधारने।
शब्द नाव बनाय सुंदर, जीव दुखित उबारने॥
प्राण तन मन कर्म वाणी, सब है अर्पण लीजिए।
मैं हूं शरणागत तुम्हारा, दास अपना कीजिए॥

सत नाम सतनाम, सतनाम जप सदा।
त्याग जग के मोह धन्धे, पाऊं भक्ति सम्पदा॥

अर्थात् इस मूर्ति वाले इष्ट में जो इस शब्द में दिया गया है परमात्मा के सब गुण लिखे हैं। यदि कोई अपने विश्वास के अनुसार किसी एक मूर्ति को पूर्ण मानकर उसका ध्यान करता है तो उसके सब काम पूरे हो जाते हैं और यदि कोई काम नहीं होता तो उसमें भलाई मान लो। परमात्मा की मर्जी मान लो, सब भले में होगा। जैसे मीरा बाई को ठाकुर का प्रसाद कह कर जहर दिया गया था परंतु उसने उसे ठाकुर का प्रसाद मानकर पी लिया तो वह अमृत बन गया था। लेकिन यह तभी होता है जब आपका उस मूर्ति पर पूरा विश्वास होता है। यदि आप कभी किसी मूर्ति को पूजते हो और कभी किसी को तो आपको सफलता नहीं मिलेगी क्योंकि 'एक ही साधे सब सधे, सब साधे सब जायें।' अत: जिस मूर्ति पर आपका विश्वास बने उसे पूर्ण मानकर, ध्यान करके प्रकट कर लो तो वह मूर्ति वाला परमात्मा आपके अंग संग रहेगा और आपके सब काम पूरे हो जाएंगे। जैसे महाराजा गंगा सिंह बीकानेर वालों को करणी माँ का इष्ट था। वह जब कहीं बाहर दौरे पर जाते थे तो करणी माता के मंदिर गांव देशनोक में जाकर ध्यान करते थे और जब इष्ट का रूप प्रकट हो जाता था तब दौरे पर जाते थे। एक बार ध्यान में करणी माता जी का रूप प्रकट नहीं हुआ तो वह तीन दिन तक शिकार पर नहीं गए अपितु मूर्ति के सामने साष्टांग दण्डवत् की अवस्था में लेटे हुए प्रार्थना करते रहे और रोते रहे। जब देवी का रूप प्रकट हुआ तब वह शिकार के लिए रवाना हुए। उनके साथ एक अंग्रेज भी था। और जंगल में जब महाराजा गंगासिंह ने शेर का शिकार करना चाहा तो शेर ने महाराजा पर आक्रमण कर दिया। उस समय अंग्रेज ने देखा कि एक औरत दोनों हाथों में तलवार लेकर प्रकट हुई और उसने तलवार से शेर को काट डाला जिस से शेर के दो टुकड़े हो गए और फिर वह औरत का

रूप गायब हो गया। जैसे मैं हमेशा कहता हूं कि मेरा रूप प्रकट होकर भक्तों की रक्षा करता है और मुझे इसका ज्ञान नहीं होता है। महाराज गंगासिंह को यहीं विश्वास था कि माता जी प्रकट होकर उसकी रक्षा करती है। जबकि यह सब खेल इंसान के विश्वास, श्रद्धा व आस्था का है। कोई मूर्ति वाला रूप या गुरु वास्तव में वहां नहीं आता और न ही उसे इस बात का ज्ञान होता है तो बात स्पष्ट है कि यह गुरू स्वरूप या देवी-देवता की मूर्ति वाला इष्ट जिसे आप पूर्ण मानते है वह आपका हमेशा रक्षक रहेगा, आपकी दुनिया सुंदर बना देगा, आपको मान-सम्मान दिला देगा परंतु मुक्ति पद के लिए अपने घट में शब्द का इष्ट आपको उस मंजिल पर पहुंचायेगा। और अंतर में इस शब्द वाले इष्ट का भेद बाहरी गुरु से ही मिलेगा।

पांच नाम के योग के स्थान मनुष्य की दोनों आंखों के बीच माथे से शुरू होकर जहां माथे पर सिर के बाल मिलते हैं, वहां तक है। संतों ने इन स्थानों के पांच नाम दिए है- सहस्राकार, ओंकार, रंरकार, सोहंकार, सत्याकार। इन स्थानों के अनुभव अलग-2 है। त्रिकुटी के स्थान (माथे के बीच) तक नाम का इष्ट स्थूल रूप है जो आसान है। जैसे कहा है-

''नाम रूप दोऊ ईश समाधि।
अकह अपार अगाध स्वामी॥

त्रिकुटी से आगे इष्ट प्रकाश का होता है और यह तभी आता है यदि शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य ठीक है। यहां साधक को विशेष आत्मानन्द का अनुभव होता है। किसी किसी साधक को पहले स्थान पर ध्यान में घण्टा तथा शंख आ जाता है और फिर आगे ध्यान की एकाग्रता के अनुसार यह शब्द ध्वनि बदलती रहती है। यह साधन का अनुभव साधक की ध्यान की एकाग्रता और उसकी प्रकृति के अनुसार बदलता रहता है जो अपने मार्गदर्शन करने वाले महापुरुष से पूछना चाहिए। ध्यान के विषय में साधक को यह एक

बात अवश्य समझ लेनी चाहिए कि यदि ध्यान में आनन्द आता है, मस्ती आती है तो आपक ध्यान ठीक है और यदि ध्यान में आपको भय लगता है या सिर में दर्द होता है तो आपका ध्यान ठीक नहीं है। ऐसी स्थिति में गुरु से पूछ कर ही ध्यान करना चाहिए। क्योंकि

सतगुरू दरस होय जब भाई, वह दे तुमको नाम चिताई।
सुरत शब्द दोऊं भेद बताई, तब देखे अंड के पारा है॥

अर्थात् जब भक्त को अंतर में स्थूल गुरु मूर्ति का दर्शन होता है या प्रकाश का अनुभव होता है तो वह उसे अण्ड के पार जाने की विधि बताता है। यह 'अण्ड के पार' क्या है? मन के संकल्प विकल्प से ऊपर जाना ही अण्ड के पार जाना है। इसके बाद सतगुरु उसे और आगे जाने का भेद देता है। जैसे-

सतगुरु कृपा दृष्टि पहचाना, अण्ड शिखर बेहद मैदाना।

जब साधक मन की हद से बाहर निकल जाता है अर्थात उसके अंतर में रूप रंग नहीं बनते तो फिर आगे बेहद (असीमित) मैदान है। किस चीज का? आत्मानन्द का। हमारे अंदर तीन चीज है एक शरीर है, एक मन है और एक हमारी आत्मा है। साधक प्रारंभ में अजपा जाप करते-करते शरीर की सुध भूल जाते है। मन की सुध जब सतगुरु उसे यह विश्वास करा देता है कि मन से उठने वाले ये जो विचार, रंग और रूप प्रकट होते है वे सत्य नहीं है अपितु भासते है। तब वह मन को छोड़कर आगे निकल जाता है। आगे है आत्मा का बेहद मैदान यानी आत्मानन्द का। अर्थात् जैसे मन का बेहद मैदान था - तरह-तरह की काल्पनिक रचना, भिन्न-भिन्न संकल्प, विचार व रुप, रंग, नजारे इत्यादि। इसी प्रकार मन से आगे आत्मा का बेहद मैदान है - प्रकाश का जिसमें आनंद ही आनंद है। यह जितने भी सूक्ष्म लोक हैं जैसे ब्रह्मलोक, शिवलोक, विष्णुलोक और सूर्य, चन्द्र व तारामंडल इत्यादि ये सब आत्मा के क्षेत्र में आते हैं। यह प्रकाश का क्षेत्र असीमित है। अगर कोई साधक इस स्थान का आनंद

लेता हुआ शरीर छोड़ता है तो ध्यान रहे कि वह निर्वाण गति में नहीं जा सकता है। वह शरीर छोड़ने पर इन सूक्ष्म देवलोकों में विचरण करता है और वहां का आनंद भोगने पर फिर नीचे आ जाता है। अत: साधक जब इन तीनों क्षेत्रों को छोड़कर जब सार शब्द के अनुभव में आ जाता है तो संतों ने उसे चौथा पद कहा है। जैसे-

तीन छोड़ चौथा पद दीन्हा, सतनाम सतगुरु पद चीन्हा।

यहां सुरत इस सार शब्द का अनुभव करते-2 अंत में अपने परम तत्व जो कुल मालिक है उसी में समा जाती है और उसी का रूप हो जाती है जैसे बूंद पानी में मिलकर पानी का ही रूप बन जाती है।

साधक को रूप का ध्यान बनाने तक परिश्रम करना पड़ता है। आगे का साधन सहज में हो जाता है। कबीर साहब ने इस आत्म अनुभव को अग्रदीप कहा है जैसे-

''सहज दास तहं रोपा थाना, जो अग्रदीप सरदारा है।''

प्राचीन काल में संतो ने यह वाणी जाल बना कर अपने-अपने अनुभव कहे हैं। शायद यह उस समय की वर्णन शैली रही होगी। परंतु आज का मानव इन पहेलियों को नहीं समझ सकता है। वह स्पष्ट वर्णन चाहता है इसलिए मैंने अपने अनुभव के आधार पर सरल शब्दों में समझाने की कोशिश की है।

यहां एक मुख्य बात समझने वाली यह है कि जब तक जीव को इस संसार में वैराग नहीं होता तब तक संत उसे आवागमन को मिटाने वाली ऊंची शिक्षा नहीं देते है। जिनको इस संसार से वैराग हो जाता है फिकाई आ जाती है उन्हीं को यह वैराग का ख्याल दिया जाता है। जैसा इस शब्द में लिखा है-

जग की चिन्ता छोड़कर, चिंता करो सतनाम की।
झूठी और मिथ्या है चिंता, मन की धन की धाम की॥
आये हैं जो जायेंगे, रहने नहीं आया कोई।

नाम लो और नाम लेकर, सोचो अब विश्राम की॥

ब्रह्म के अवतार तक, रहने नहीं पाया यहां।
सोचकर पढ़ लो कहानी, अपने सीयाराम की॥

मोह माया में फंसे है जो, उनको कब है शांति।
है गले में उनके फांसी, लोभ, मद और काम की॥

सतगुरु का नाम लो, अरू नाम आठों याम लो।

लोग समझते हैं कि बाहर का गुरु जीव को फूंक मारकर उस जीव की दुनिया बना देता है और उसको मुक्ति व शांति दे देता है। यह सब जीव के भ्रम हैं। मैने जो अनुभव किया है वह यह है कि यह सब जीव के पहले के और इस जन्म के कर्मो के अनुसार होता है। बाहर का गुरु सच्चा ज्ञान देता है और अपने वचन से उसके भ्रम, शंका दूर कर पथ-प्रदर्शन करता है।

ध्यान योग का दूसरा भाग है-अलख, अगम और अनाम का साधन जो आवागमन मिटाने का योग है। यह सुरत - शब्द का योग है जो मनुष्य की खोपड़ी के मस्तिष्क के अगले भाग में जहां छोटे बच्चों का तालवा टीप-2 करता है, वहां से शुरु होता है और मनुष्य के सिर के ऊपर जहां हिंदु चोटी रखते है वहां तक समाप्त होता है। इस योग में कोई रूप, रंग तथा नजारा या चमत्कार नहीं हैं। केवल सुरत अंतर में सार शब्द का अनुभव करती रहती है। संतों का इष्ट यह सार शब्द है जो अलख, अगम और अनामी की मंजिल पार करने वाला है। जैसे इस शब्द में लिखा है-

मंगलम् गुरु शब्द रूपं, अनाम नाम प्रकाशनम्।
मंगलम् शब्दार्थ शब्दाधार, शब्द निवासनम्॥

गुप्त अपने आप में जब, अलख अगम अनाम आप।
जब प्रकट आनन्द ज्ञानाकार, अरू सत धाम आप॥

साज संत समाज मंगल, काज जीव उधार को।
आपने धारण किया है, परम सन्त अवतार को॥

आप है आधार सब के, आपके आधार सब।
वार पार से रहित आप है, और वारा पारा सब॥

संग देकर सत का, सत्संगत में जीव अधीन को।
सिंध सद्गति से मिलाया, जीव रूपी मीन को॥

सैन बैन का आसरा, सत्संग द्वारा दान दे।
शब्द योग सिखाया अनहद, धाम पद निरवान दे॥

धन्य सतगुरु फकीर दयाला, पार भव से कीजिए।
भक्ति मुक्ति योग युक्ति, ज्ञान शक्ति दीजिए॥

इस शब्द को संत मत में सार शब्द कहा है। इस सार शब्द का इष्ट अलख से शुरू होकर अगम का सफर करते हुए अनाम गति तक है। इस योग में सुरत केवल अंदर के सार शब्द का अनुभवी करती रहती है। मेरा 1956 से ही यह योग रहा है। मुझे पहले दिन ही गुरु जी के पास बैठने से उनकी रेडियेशन से अंतर में इस सार शब्द का अनुभव हो गया था जो सुरत के अंतर में चलने की आवाज या धुन होती है। यह सुरत के अंतर में चलने की आवाज या धुन होती है। यह सुरत शब्द योग अनुभव का विषय है, शब्दों से इसका ब्यान नहीं किया जा सकता है। जैसे-

उत्तमा सहजावस्था, मध्यमा ध्यान धारणा।
अधमा तीर्थयात्रा, मूर्तिपूजा चाधमाधमा॥

मेरे भाग्य में शुरू से ही यह उत्तमा योग विधि आई जो थोड़े समय गुरु जी की संगत से सहज ही अनुभव में आ गई। जीवन में कभी किसी प्रकार की कोई समस्या या रूकावट नहीं आई। उनकी कृपा से मार्ग सीधा, सहज रहा। संतों ने शब्द रच रच कर बहुत बड़ा

वाणी जाल बना रखा है। 'न नौ मन तेल हो न राधा नाचे' वाली बात है। साधक अधिक इस वाणी को समझने में ही लगे रहते हैं। नीचे ऐसा एक शब्द लिखता हूं।

मुरलिया बाज रही, कोई सुने संत धर ध्यान।
सो मुरली गुरु मोहि सुनाई, लगे प्रेम के बान॥
पिंड छोड़ अंड तज भागी, सुनी घर में अपुख तान।
पाया शब्द मिली हंसन से, खेंच चढ़ाई सुरत कमान॥
यह बंसी सतनाम बंस की, किया अमर घर अमृत पान।
भंवर गुफा ढिंग सोहं बंसी, रीझ रही मैं सुन-2 कान॥
इस मुरली का मर्म पिछानो, मिली शब्द की खान।
गई सुरत खोला वह द्वारा, पहुंची निज अस्थान॥
सतपुरूष धुन बीन सुनाई, अदभुत् जिनकी शान।
जिन-जिन सुनी आन यह बंसी, दूर किया सब मन का मान॥
सुरत सम्हारत निरत निहारत, पाय गई अब नाम निशान।
अलख अगम और राधास्वामी, खेल रहा अब उस मैदान॥

पिछले संतों की यह वाणियां है जिनको सुन सुन कर साधक पूरे जीवन उन्मत्त रहते है और इन वाणियों को समझ नहीं पाते है। इस वाणी में लिखा है :

जिन-2 सुनी आन यह बंसी, दूर किया सब मन का मान।

अब यह 'मन का मान' क्या है। जो भी विचार भाव मन से निकलते है या साधन में जो रंग, रूप आदि के नजारे दिखते हैं उनको सच न मानना ही मन का मान दूर करना है। साधक इन अंदर के विचार, भाव व नजारों में उलझा रहता है और पिछले महापुरूषों की ये वाणियां उसे समझ में नहीं आती है। साधक इन अंदर के विचार,

भाव व नजारों में उलझा रहता है और पिछले महापुरूषों की ये वाणियां उसे समझ में नहीं आती है। कबीर साहब जो संतमत के सरताज माने जाते हैं, उनकी वाणियां भी अधिकतर रहस्य में है। उन्होंने भी अपनी वर्णन शैली में कहीं चकरी का नाम दिया है, कहीं कुछ और कहा है। इसी तरह साधन के भी दर्जे कायम किए हैं और बहुत बारीकी से अपना अनुभव बताया है। इन वाणियों को केवल ऊंचे दर्जे के अभ्यासी ही अपने अनुभव ज्ञान से समझ सकते है। परंतु खेद है कि आज के मानव के पास इतना समय नहीं है और न ही ऐसे महापुरूष हैं जो इन वाणियों को समझा सके। अब समय है इस समय के अनुसार विधि-विधान व वर्णन शैली का जिसे आज का जिज्ञासु सहज में समझ कर लाभ उठा सके। मैंने अपने योग के अनुभव के आधार पर दो प्रकार के इष्ट बताए है। एक तो है अब और पहले से प्रचलित रूप, रंग, आकृति वाला जिसे अधिकतर मनुष्य परमात्मा मानकर उसका ध्यान करके पूजते है और उनके ही विश्वास के अनुसार उन्हें फल मिलता है। दूसरा इष्ट है जिसका न कोई रंग है, न रूप है, न कोई शक्ल है और न कोई देखने का आकार। यह इष्ट घर में सार शब्द है जिसे राम नाम, शब्द ब्रह्म, अनहद नाद इत्यादि अनेक नामों से जाना जाता है। यह इष्ट उन लोगों के लिए है जो हमेशा के लिए जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा चाहते है। मेरे अनुभव में यह आत्म ज्ञान या सुरत शब्द योग बहुत ही आसान और सहज में आया है क्योंकि मुझे इस सार शब्द का अनुभव गुरु कृपा से पहले ही दिन कुछ ही मिनटों के संग से प्राप्त हो गया था और मुझे इन वाणी जाल में फंसने की आवश्यकता ही नहीं हुई।

अनुभव ज्ञान

मनुष्य के लिए अपने निज रूप या सुरत तत्व को सहज योग से अनुभव ज्ञान से जानने की विधि तो बहुत आसान है। किसी पूर्ण अनुभवी व ज्ञानी पुरूष या जीवनमुक्त पुरूष की थोड़ी संगत में यह सहज अनुभव में आ जाती है परंतु शर्त यह है कि इसका अनुभव चाहने वाला जिज्ञासु इसके योग्य हो और उसको इस ज्ञान प्राप्ति की जबरदस्त चाह, तड़फ लगन हो। फिर देर लगने वाली कोई बात मेरे अनुभव में नहीं आई है। जैसे कहा है–

''नानक नदरी नदर निहाल।''

इसका प्रमाण मैं खुद हूं जो इस समय मानव शरीर में जीवन जी रहा हूं। परंतु कबीर साहब आदि प्राचीन संतों ने कई तरह की समाधि बताई है। जैसे शरीर की एकाग्रता, मन की एकाग्रता, आत्मा की एकाग्रता और फिर आगे सुरत शब्द योग में भिन्न–2 स्थानों पर एकाग्रता। यह सब साधक की प्रकृति पर निर्भर करता है कि उसकी एकाग्रता किस स्थान पर होती है। हमारी सुरत जो उस परमात्मा का अंश है, यह जहां से आती है, कबीर ने उसके अवगति, अमरापुरी, निज धाम इत्यादि बहुत से नाम रखे हुए हैं, जैसे इस शब्द में लिखा है–

अवगति पार न पावे कोई॥ (टेक)
अवगति नाम पुरूष को कहिए, अगम अगोचर वासा।
ताको भेद संत कोई जाने, जाकी सुरत समोई॥
अवगति अक्षर जग से न्यारा, जिह्वा कहा न जाई।
वेद कतेब पार नहीं पावें, भूल रहे सब कोई॥
अवगति पुरुष चराचर व्यापे, भेद न पावे कोई।
चार वेद में ब्रह्म भूले, आदि नाम नहीं पाई॥

अवगति नाम की अद्भुत महिमा, सुरति निरति से पाई।
दास कबीर अमरपुर वासी, हंसा लोक पठाई॥

इसी अवगति पर एक और दूसरा शब्द है–

अब हम अवगति से चल आए।
माया ने जग भरमाया, मेरा भेद मर्म नहीं पाया॥
नहीं हम जन्में गर्भ बसेरा, बालक हो दिखलाए।
काशीपुर जंगल विच डेरा, जहां जुलाहे ने पाए॥
है ते विदेह देह धरि आए, काया धर कबीर कहाए।
जुगन जुगन के बिछड़े हंसा, जिन्हें उबारन आए॥
ना मेरे रक्त हाड़ नहीं चामा, शब्द रूप धरि आए।
अलख पुरुष कर्ता अविनाशी, बन्दी छोड़ कहाएं॥
हम सर्वभंगी सतलोक के, घर–2 वासा पाए।
आत्म रूप प्रकट है जग में, सोई नाम कहाए॥
देह अपार पार पुरुषोत्तम, सतगुरु हो जग आए।
कहे कबीर सुनो भाई साधो, सत ही नाम लखाए॥

अवगति का अर्थ है जो गति नहीं करता एक स्थान पर रहते हुए उसकी सत्ता सब जगह होती है यह अवगति नाम परमात्मा का है जहां से यह मनुष्य की सुरत आई है। उसकी सत्ता सब जगह होती है। उसी की सत्ता से यह चांद, सूर्य, लोक, लोकान्तर सब बनते हैं और नष्ट होकर उसी में समा जाते हैं। उसका न कोई नाम है न रूप है। यह सब खेल उसी का है। उसकी अंश यह मनुष्य की सुरत यहां सब खेल कर रही है। वह एक स्थानीय, सर्वज्ञ और सर्वत्र है। जैसे सूर्य यहां नहीं आता, उसकी किरणें यहां काम करती है। यदि सूर्य यहां आ जाए तो सब कुछ उसी में समा जायेगा। यही बात परमात्मा की है।

उसकी एक छोटी सी किरण जिसको सन्त सुरत कहते हैं वह यहां सब खेल कर रही है और अन्त में ध्यान करने पर शब्द की धार के साथ उसी में समा जाती है।

आपको एक प्राकृतिक समाधि का उदाहरण देकर बात समझाने का यत्न करता हूं। हम रात को जब गहरी नींद में जाते हैं तब हम उस अवगति में प्राकृतिक तौर से समा जाते हैं। यानी अपनी हस्ती वहां खत्म हो जाती है। वहां से पूरी नीन्द लेकर जब हम शरीर में आते हैं तब वहां से शक्ति या Energy लेकर आते हैं। आप रोज लोगों को देखते हैं कि वे दिन भर के काम से थक जाते हैं। जैसे एक मजदूर दिन भर पत्थर तोड़ता है या बोझ ढोता है और शाम तक थक जाता है और रात को गहरी नींद में चला जाता है तो वह पूरी रात अवगति में रहता है। फिर सुबह जागता है और पूरा दिन वही काम करता है। रात को उसने घी, मक्खन या कोई टॉनिक तो नहीं पिया तो फिर यह काम करने की शक्ति कहां से आई? उसकी यह सुरत प्राकृतिक तरीके से अपने निज घर यानी अवगति में जाकर मिल गई थी और वहां से उसे यह शक्ति मिली इसी तरह हर रोज जीव गहरी नींद में जाकर उस परमात्मा तत्व में लीन हो जाता है और फिर प्राकृतिक नियमानुसार यहां शरीर में आकर अपना काम करता है। यदि मनुष्य को गहरी नींद चार-पांच दिन न आए तो उसके दिमाग का सन्तुलन बिगड़ जाता है।

मैंने यह बात बुद्धिमान् पढे-लिखे, समझदार सज्जनों को समझाने के लिए लिखी है। यदि कोई बुद्धिमान् सज्जन बुद्धि के दर्जे पर यह बात समझ भी जाता है तो यह बहुत बड़ी प्राप्ति है परन्तु बिना अनुभव ज्ञान के जब भी कोई सांसारिक समस्या आती है तब यह ज्ञान जो बुद्धि से समझा था, भूल जायेगा। यह ज्ञान अनुभव का है जो ध्यान की एकाग्रता से ही अनुभव में आता है और यह अनुभव ज्ञान ही एक रस बना रहता है। जैसे कहा है-

यह करनी का भेद है, नाहीं बुद्धि विचार।
कथनी तज करनी करे, तब पावे कुछ सार।।

अत: अध्यात्म में परमात्मा को जानने या अनुभव करने का केवल एक ही तरीका है और वह है सुरत-शब्द योग का साधन जो इस शरीर रहते ही अनुभव किया जा सकता है। इस योग साधन में यह बून्द रूपी सुरत जब परमात्मा रूपी महासागर में जाकर मिलती है तो उसी मे मिल जाती है और फिर इसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रहता तो फिर कोई उसके बारे में क्या बता सकता है? जैसे कहा है -

शब्द प्रकट तब धरिया नाम।
शब्द गुप्त तब हुआ अनाम॥
सुरत हुई अतिकर मगनानी।
पुरुष अनामी जाय समानी॥
जाप मरे अजपा मरे, अनहद भी मर जाय।
सुरत समानी शब्द में, ताको काल न खाय॥

अत: अध्यात्म में परमात्मा को जानने या अनुभव करने का केवल एक ही तरीका है और वह है सुरत शब्द योग का साधन जो इस शरीर रहते ही अनुभव किया जा सकता है। इस योग साधन में यह बून्द रूपी सुरत जब परमात्मा रूपी महासागर में जाकर मिलती है तो उसी में मिल जाती है और फिर इसका अपना कोई अस्तित्व ही नहीं रहता तो फिर कोई उसके बारे में क्या बता सकता है?

आज तक जितने अवतार, ऋषि, मुनि, नाथ, ज्ञानी, ध्यानी, सन्त गए हैं किसी ने वापिस आकर नहीं बताया कि वो अब कहां है और क्या कर रहे हैं? क्योंकि-

"फिरा न मुलके अदब से कोई की

पूछें, मुसाफिरों मंजिल पर क्या गुजरी।"

उतते कोई न आइया, जा से पूछूं जाय।
इतते सब कोई जात है, भार लदाय लदाय॥

मनुष्य यह जितने कर्म, धर्म, नियम, व्रत, आचार, भक्ति भाव, कर्मकाण्ड करता है और फिर अपना इष्ट बना कर घट में रूप का ध्यान, प्रकाश का ध्यान तथा भिन्न-भिन्न शब्दों को सुनकर अन्त में सार शब्द का ध्यान करता है, वह यह तभी तक करता है जब तक उसे अपने निज रूप का अनुभव नहीं होता है। अपने स्वयं के रूप को जानने के बाद वह सब योग युक्ति, साधन-अभ्यास व मान्यताएं छोड़ देता है और फिर परमात्मा की शरणागत होकर, उसी की रजा में रहकर एक जीवन्मुक्त अवस्था में अपना जीवन जीता है। जैसा इस शब्द में लिखा है-

शब्द

पिला दे भक्ति का ऐसा प्याला।
ममत्व अपने मन का खो दूं॥
न बुद्धि रहे न शुद्धि रहे कुछ।
अहंपना सब मन का खो दूं॥
जपूं तपू और भजूं न सुमिरू।
न योग युक्ति के पंथ में दौडूं॥
न नाम की माला हाथ में हो।
हिय की माला का मनका खो दूं॥
वह राग क्या जिसमें राग आए।
वह त्याग क्या जो त्याग में फंसाए॥
न बन्ध और मुक्ति का हो खटका।

विवेक घर और वन का खो दूं॥
न दुख की दुविधा न सुख की चिन्ता।
न चित्त की दुचिता का भय हो किंचित्॥
न ज्ञान और ध्यान की हो इच्छा।
विचार साधन यत्न का खो दूं॥
न द्वन्द्व निरद्वन्द्व का हो झगड़ा।
न द्वैत अद्वैत का हो बखेड़ा॥
झुका के सिर सतगुरु पद में।
विचार तक दासापन का खो दूं॥

वास्तव में यह अध्यात्म ज्ञान अनुभव का है। अध्यात्म विषय में बहुत से शास्त्र लिखे गए है जिन्हें लोग पढते भी है और सुनते भी है परन्तु अध्यात्म ज्ञान के अनुभव से कोरे हैं। आज जगह-जगह आश्रमों में सत्संग दिए जा रहे हैं, शिष्यों को नाम की दीक्षा दी जा रही है परन्तु उसका कोई असर लोगों मे ंनजर नहीं आ रहा है। आजकल सुबह से शाम तक टेलिविजन में जो महापुरुष अपना सत्संग दे रहे हैं, वे लाख दो लाख रुपये महिने का देकर टेलिविजन पर आते हैं और हर रोज नई-नई वेशभूषा पहन कर लोगों को दर्शन देते हैं। वे अपना अनुभव तो कुछ बताते नहीं है बस सुन्दर-सुन्दर कथाएं सुनाते हैं या शास्त्रों में लिखी बातें बताते हैं। यही कारण है कि उनका कोई प्रभाव लोगों में नजर नहीं आता हैं क्योंकि यह ज्ञान अनुभव का है। अतः कोई महापुरुष जो खुद अनुभवी हो वही दूसरे जिज्ञासु को अनुभव करा सकता है। और यह सत्संग देने का कार्य उन्हीं महापुरुषों के लिए उचित है जो ध्यान योग में अपने अन्दर सफेद रंग के प्रकाश का अनुभव करते हैं या फिर घण्टा, बीन, सारंगी इत्यादि शब्द का अनुभव करते हैं। ऐसे महापुरुषों के दर्शन मात्र से

लाभ हो जाता है, उनके वचन व संग की तो बात ही क्या?

इसके लिए आपको एक उदाहरण देकर समझाता हूं। एक बुढिया का सात-आठ वर्ष का पुत्र बहुत ही गुड़ खाता था। उसने उसे बहुत समझाया लेकिन वह नहीं माना। किसी के कहने पर वह बुढिया अपने पुत्र को एक महापुरुष के पास ले गई। वहां जाकर उसने उस महापुरुष से अर्ज की कि महाराज जी- मेरा पुत्र गुड़ बहुत खाता है आप कृपा करके इसे समझाएं। महापुरुष ने कहा कि आप एक महीने के बाद बच्चे को लेकर आना। वह बुढिया एक महीने बाद फिर अपने बच्चे को लेकर उस महाराज जी के पास पहुंच गई और वहां जाकर दोबारा वहीं अर्ज की। महाराज जी ने बच्चे के सिर पर हाथ रखा और बड़े प्यार से कहा कि बेटे, आज के बाद गुड़ मत खाना, ज्यादा गुड़ खाने से आप बीमार हो जायेंगे। और यह बात कह कर उस बुढिया से कहा कि माई। जाओ, आज के बाद तुम्हारा बच्चा गुड़ नहीं खाएगा। वह बुढ़िया यह सुनकर बड़ी हैरान हुई और उस ने महाराज जी से कहा कि अगर आपने केवल इतना ही कहना था तो इसके लिए मुझे दोबारा क्यों बुलाया? यह बात तो आप उस दिन भी कह सकते थे। इस बात पर महाराज जी मुस्कराए और उन्होंने कहा कि मैं उस समय यह बात नहीं कह सकता था क्योंकि उस समय मैं खुद गुड़ खाता था। अब मैंने इतने दिन गुड़ का त्याग किया है। अत: अब मेरी यह बात बच्चे पर प्रभाव डालेगी।

कहने का तात्पर्य यह है कि जो महापुरुष खुद अनुभवी होता है उसका प्रभाव दूसरे पर बहुत जल्दी पड़ता है। इसका मैं खुद प्रमाण हूं क्योंकि जब मैं अपने गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के पास पहली बार इस ज्ञान को जानने के लिए गया तब वह अपनी अनुभव समाधि में बैठे हुए थे और मैं इस ज्ञान के विषय में कोरा था। मुझे तो उनके सामने उचित आसन में बैठने का भी ज्ञान नहीं था। उन्होंने मुझे धर्म के बारे में दो चार बात बताई और फिर अपनी सहज समाधि

में चले गए। मैं उनके सामने साधारण अपनी आंखे बन्द करके बैठ गया और थोड़ी देर बाद ही उनकी रेडियशन से मेरा ध्यान ऊपर की तरफ खिंचा और मुझे बच्चे के तालु वाले स्थान पर जबरदस्त आनन्द की अनुभूति हुई। जब वह समाधि से उठे तो मैंने उन्हें यह अनुभव बताया तो उन्होंने कहा कि आप सौभाग्यशाली है और यह वहीं अनुभव ज्ञान है जिसे जानने के लिए आप मेरे पास आए हैं। तो यह है अनुभवी महापुरुष के संग का फल। अब कुछ लोग मेरी इस घटना की नकल करते हैं और चाहते हैं कि उन्हें भी मेरी ही तरह अनुभव हो जाए जबकि यह विषय नकल का नहीं है क्योंकि जब मैं गुरु जी के पास गया तब मेरी दुनिया बनी हुई थी और मैं केवल इसी ज्ञान के लिए वहां गया था। अगर कोई इसी तरह का जिज्ञासु मेरे सत्संग में आता है और इस विचार के साथ बैठता है तो उसे भी यह अनुभूति हो जाती है क्योंकि मैं अधिकतर सहज समाधि में रहता हूं। कुछ सज्जन इसके प्रमाण हैं जिन्हें यह लाभ हुआ है।

प्यारे सज्जनों! मैंने अपने अनुभव ज्ञान के आधार पर अध्यात्म ज्ञान का सार बताने का प्रयास किया है परन्तु सच्चाई यह है कि मेरे पास आपको समझाने के लिए उचित शब्द नहीं है। और दूसरी बात यह है कि यह अध्यात्म ज्ञान वाली सच्चाई न तो बताई जा सकती है और न लिखी जा सकती है। जो लिखा जाता है या बताया जाता है वह सच्चाई नहीं हो सकती है। फिर यह सच्चाई कैसे जानी जा सकती है। यह सच्चाई किसी हाजिर अनुभवी महापुरुष का संग करके, उसके मार्गदर्शन से बात समझ कर खुद अनुभव की जा सकती है। मुझे औरों का तो पता नहीं, मेरी सच्चाई यह है कि मैं 1962 से गुरु कृपा से सहज में इस अनुभव ज्ञान में यानी निज रूप के अनुभव में अपना जीवन जीता हुआ चला आ रहा हूं अब मेरी आयु 87 साल की हो गई है। और मेरा अनुमान है कि यदि अन्त समय तक मेरा यही अनुभव रहा तो मेरी सुरत सदा के लिए उस महातत्व में लीन हो

जायेगी लेकिन निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। जैसे कहा है–

"तपा रे तपा, काहे को खपा।
अन्त समय पता नहीं क्या हो मता॥"
"अन्त मता सो गता।"

वास्तव में मनुष्य अपने अनुभव के आधार पर केवल अपने निज रूप को ही जान सकता है, उस परमात्मा की थाह को कोई नहीं जान सकता है। उसका खेल गजब का है। जैसे कहा है–

"खुदा की खुदाई, खुदा ही जाने।
प्रभु की प्रभुताई, प्रभु ही जाने॥"
"तेरी लीला कौन जाने, तू तो अपरम्पार है।
एक दृष्टि तेरी से, दुखियों का बेड़ा पार है॥"
"कहां लग कहूं नाम प्रभु भाई,
राम न सक ही नाम गुण गाई॥"

अर्थात् यह नाम ही मनुष्य में ईश्वर अंश है जो हर मनुष्य में लीला कर रहा है। बस इसी का अनुभव करना है, यही मुख्य बात है।

मानव कल्याण

इस संसार में दो तरह के इंसान है। एक तो वह है जिनकी सदबुद्धि है और जो हमेशा शिव संकल्प रखते हैं तथा मानवता के हित के लिए अच्छे अच्छे कार्य करते है, दूसरी तरफ वह इंसान है जो मानव का विनाश करने में लगे है। जैसे एक तरफ तो अच्छे वैज्ञानिक मानव के हित के लिए नई–नई सुख सुविधाओं को प्राप्त कराने की खोज में लगे है तो दूसरी तरफ कुबुद्धि वाले वैज्ञानिक मानव का संहार करने के लिए नए–नए बम व विस्फोट आदि पदार्थों का निर्माण कर रहे हैं। इसी तरह जो राज सत्ता में भले आदमी हैं वो मानव की भलाई के लिए नई–नई योजनाएं करते हैं तो दूसरी तरफ ऐसे इंसान है जो अपनी सात पीढ़ी तक के लिए अपना घर भरने में लगे रहते हैं जबकि अगली घड़ी की खबर नहीं कि उन्हें श्वास आए या न आए। इसी तरह आज धर्म के नाम पर भगवा कपड़ा पहनकर साधु महात्मा का वेश बनाकर लोग भोले भाले लोगों को लूट रहे हैं।

प्यारे सज्जनों! इन धर्म पुरूषों का कार्य तो था लोगों में प्रेम प्यार का भाव उत्पन्न कर उन्हें सच्चा ज्ञान देने का लेकिन यहां पर भी ये महापुरूष ज्ञान देकर मनुष्य को सुखी करने की बजाय लोगों के पैसे से अपने–अपने आश्रम व डेरे बनाने व अपनी ऐशो आराम के साधन जुटाने में लगे हैं। आज ये महापुरूष राजाओं जैसे ठाठ–बाट से अपना जीवन जीते है और लोगों को सच्चा ज्ञान देकर जीवन भर उन्हें अपने पीछे लगाए रखते हैं। मैं जानता हूं कि लोगों को अच्छे संस्कार देने के लिए आरंभ में इन डेरों व आश्रमों का होना आवश्यक है परंतु जीवों को हमेशा के लिए किसी धर्म पंथ अथवा किसी नाम धाम के साथ बांध रखना और वास्तविकता को छुपाना महान् पाप है। इन महापुरूषों का उद्देश्य निस्वार्थ भाव से धर्म का रहस्य समझाकर, सच्चा ज्ञान देकर धीरे–2 उन्हें मुक्त करना है न कि जीवन भर फंसाए

रखना क्योंकि स्कूल या कॉलेज शिक्षा देने के लिए व अस्पताल स्वास्थ्य देने के लिए होते है। यदि पूरी उम्र जीवों को कॉलेज या अस्पताल में ही रखा जाएं तो यह कहां कि बुद्धिमानी होगी। इसी विचार से मैंने कोई आश्रम या डेरा नहीं बनाया है क्योंकि बुद्धिमान् लोगों का आजके इन आश्रम व डेरों के महापुरूषों में कोई विश्वास नहीं है। वे हर रोज इन आश्रम के सत्संगियों में नफरत, ईर्ष्या व द्वेष के भाव देखते हैं और न ही उनके व्यवहार में कोई बदलाव देखते है। आज जो धार्मिक क्षेत्र में नई-2 असभ्य व अश्लील घटनाएं महात्माओं के बारे में अखबारों व दूरदर्शन पर पढ़ने व सुनने को मिलती हैं तो लोगों का धर्म के प्रति विश्वास उठता जा रहा है। संसार के दुखों से बच कर जीव इन धर्म गुरुओं का सहारा लेता है और यहां भी उसे सुख शांति की बजाय अशांति ही मिलती है। और लोगों के ये दुख व अशांति के विचार ही जब रेडियेट होकर ऊपर जाते हैं तो वापिस आकर प्राकृतिक आपदाएं जैसे बाढ़ का आना, सूखा पड़ना, भोचाल आना इत्यादि लेकर आते है।

वास्तव में मानव कल्याण व देश कल्याण राजनेताओं और धर्म गुरुओं के द्वारा ही हो सकता है क्योंकि मानव राज सत्ता के आधीन व अधिकतर गुरुओं के नियंत्रण में है। पहले भी यही बात थी और आज भी यही बात है। पहले जब राजा राज करते थे तब कहा जाता था कि 'यथा राजा तथा प्रजा' अर्थात जैसा राजा है वैसी ही उसकी प्रजा होगी। पहले जो आदर्श राजा होते थे वह प्रजा की भलाई के लिए रात को वेश बदल कर चक्कर लगाकर देखते थे कि उनके राज्य में प्रजा दुखी तो नहीं है और जो कोई अपराध करता था उसे सख्त दण्ड दिया जाता था और यही राज धर्म है। परंतु आज देश की सत्ता जिन मंत्रियों के हाथ में है उन्हें प्रजा के सुख की अपेक्षा अपने सुख सुविधा की अधिक चिंता रहती है और वे स्वार्थवश अपना घर भरने में लगे रहते है, गबन करते है, पकड़े जाते है और फिर घूस

देकर छूट जाते है। अत: देश की सत्ता जिनके हाथ में है वे खुद ही ठीक नहीं है तो वे देश की क्या रक्षा करेंगे ? जिस पार्टी के हाथ में सत्ता आती है वह दूसरी पार्टी की कमियों को देखती है और उसकी आलोचना करती है और उस दूसरी पार्टी में कुछ अच्छाई है तो वह उन्हें नजर अंदाज कर केवल उसकी बुराईयों को प्रजा के सामने लाती है। अब देश में जो कुछ हो रहा है वह आप सब देख ही रहे है।

मानव जीवन के ये दो बड़े सहारे थे। शासन मनुष्य के जान-माल की रक्षा करे, उसे हर क्षेत्र में उन्नति करने व हर तरह से सुखी जीवन जीने की सुविधा दे और मानव को निर्भय करें। धर्म नेता तथा ज्ञानी मनुष्य को सुखी जीवन जीने के लिए ज्ञान दें और उसकी योग्यता व प्रकृति के अनुसार सहज योग विधि बताकर जीवन के हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने का तरीका बताकर उसका मार्गदर्शन करें।

परंतु ये धार्मिक गुरु और राजनेता मानव को सहायता व सुख-शांति देने का कार्य तभी कर सकते हैं जब वे अपने कर्त्तव्य के प्रति सचेत हों और उन्हें यह ज्ञान हो कि मानवता की सेवा करना हमारा मुख्य धर्म है। जैसे -

परहित सरस धर्म नहीं भाई।
परपीड़ा सम नहीं अधमाई॥

अपने लिए जीये तो क्या जीये।
यह तन मन धन मानव सेवा के लिए॥

तरवर सरवर सन्त जन चौथे बरसे मेह।
परमार्थ के कारणे ये चारों धारे देह॥

अर्थात् शास्त्रों में परोपकार या दूसरों की भलाई को सबसे बड़ा धर्म माना है और राजनेताओं तथा संतों का तो जीवन ही परमार्थ के लिए होता है। जैसे वृक्ष दूसरों को छाया देता है, फल देता है और

बदले में अपने लिए कुछ नहीं चाहता। तालाब, कुएं, बावड़ी आदि अपने जल से दूसरों की प्यास बुझाते है और बदले में कुछ नहीं चाहते इसी प्रकार इन महापुरुषों का जीवन मानवता के लिए होता है। जनता इन्हें अपना स्वामी या रक्षक मानती है। लेकिन जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो जनता कहां जाए?

आज इन राजनेताओं व धर्म गुरुओं की हालत को देखकर मेरी तो परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह इन दोनों को सद्मति दे ताकि वे अपने कर्त्तव्य का पालन मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर मालिक से डर कर करें और वे अधम गति से बच सकें। क्योंकि कर्म के फल से कोई बचता नहीं है। जैसे नीचे शब्द में कर्म गति के बारे में स्पष्ट लिखा है

कर्म गति टारे नाहि टरे।

मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी, सोध के लगन धरी।
सीता हरन मरन दशरथ को, वन में विपत परी॥
कहां व फंद कहां वह पारिघ, कहां वह मृग चरी।
सीता को हरि ले गयो रावण, सोने की लंक जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द बिकाने, बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप, गिरगिट जोनि परी॥
पाण्डव जिनके आप सारथी, तिन पर विपत्ति परी।
दुर्योधन को गर्व घटायो, जदु कुल नास करी॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा, विधि संजोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, होनी होके रही॥

अर्थात् इतिहास साक्षी है कि राम व पाण्डु जैसे भी कर्म के फल से नहीं बच सके तो आज जो ये धर्मगुरु व राजनेता अपने स्वार्थवश भोले भाले लोगों को धोखा देकर लूट-पाट कर रहे हैं वे

अपने कर्मफल से बचकर कहां जाएंगे? आज भारत व विश्व में जो नई-2 समस्याएं मानव जीवन को भोगनी पड़ रही हैं और जो राज प्रणाली व धर्म पंथ में त्रुटियां नजर आ रही है वह सब मानव की नासमझी व अज्ञानता के कारण है और उनके अशुभ कर्मो का फल है। यदि मनुष्य को यह समझ में आ जाएं और उसे इस कर्मगति का ज्ञान हो जाए कि वह जो अपने स्वार्थवश अशुभ कार्य कर रहे है, उन्हें उसका दण्ड भोगना पड़ेगा तो वे ऐसे अशुभ कार्य से अपने आप को बचा सकते हैं।

अत: आज आवश्यकता है कि इन धर्म गुरुओं व राजनेताओं को मानवता व शिव संकल्प का ज्ञान देने की और इस कर्म रहस्य के बारे में समझाने की ताकि वे मन, वचन व कर्म से पवित्र होकर निस्वार्थ भाव से मानव कल्याण का कार्य कर सकें। वे स्वयं आदर्श रूप हो जिससे देश में मानव धर्म या मजहबे इंसायित का (Religion of humanity) का प्रचार हो। देश में चुनाव की विधि या प्रणाली को बदला जाए जिससे योग्य, बुद्धिमान्, समझदार व पवित्र विचारों के मनुष्य शासन में काम करें और मानवता में ईर्ष्या, द्वेष, नफरत आदि भावों को पनपने न दिया जाए। और अपराधी के लिए उचित दण्ड व्यवस्था हो जिससे वे गलत कार्य करने से डरे।

मैं धार्मिक विचारों का साधारण गृहस्थी हूं और मैंने इस धर्म के रहस्य को समझ कर सहज योग साधन से अनुभव करते हुए मुक्त अवस्था का जीवन जीया है। फौज में नौकरी करते हुए, रिटायरमैंट के बाद घर में रहते हुए, दुनिया के सब काम करते हुए यानी हर स्थिति में योग साधन से उस तत्व का अनुभव करते हुए जिंदगी का आनंद लिया है और इस अनुभव के आधार पर मेरे यही समझ में आया है कि यदि मनुष्य को यह ज्ञान हो जाए तो वह अपना जीवन सुंदर तरीके से जी सकता है। उसे इसके लिए कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। बस जरूरत है तो किसी महापुरूष से इस ज्ञान

को समझने की और अगर उसे इस ज्ञान की समझ आ जाए तो वह अपना सुंदर जीवन जीते हुए अपने कल्याण के साथ-2 दूसरों का भी कल्याण कर सकता है।

अन्त में दाता दयाल का एक शब्द लिखता हूं-

ऐ मेरे प्यारे भाई, देखो संभल के चलना।
खोटे कर्म न करना, खोटी न बात कहना॥

दुख दोगे दुख मिलेगा, सुख दोगे सुख मिलेगा।
मारोगे तुम किसी को, फिर गम पड़ेगा सहना॥

कौलो ख्याल कर तब, दरिया से है मुशाबा।
तुम देखना न इनकी, लहरों में पड़ के बहना॥

मन इन्द्रियों पै भाई, जब्त रखना तुम बराबर।
जीवित बने रहोगे, खुशहाल होके रहना॥

अपनी नशस्त रखना, तुम आसमां पै हर दम।
आत्म स्वरूप रहकर, संसार में विचरना॥

ॐ शांति शांति शांति।